CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

# सहजानन्द गीता प्रवचन

3.4 VHP

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५

ता प्रवचन

। ऐ
सि
त्य-प्र
षय
महार
ातुम
प्रका
उपल
नः
हत्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२५८६ 
१४०४

# सहजानन्द गीता-प्रवचन

## ( सुख यहाँ )

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥

बन्धुवर !

हम आप जीव हैं। जिनमें जानने देखनेकी शक्ति हो उसे जीव कहते हैं। जो इस शक्तिसे रहित हैं उन्हें अजीव कहते हैं। जो जानने, देखने वाली ज्योति है वही 'मैं हूं। इस ज्योतिके साथ अविनाभावी आनन्द है। इस आनन्द गुणके विकास सुख-दुख व आनन्द हैं। सब जीव यही चाहते हैं कि मैं सुखी रहूं दुख न भोगूं। हम जितना भी प्रयास करतेहैं, काम करते हैं उसका उद्देश्य केवल यह है कि मैं सुखी रहूं। दुखसे छुटकारा पा जाऊं। सुखकी खोजमें ही रात दिन लगा रहता है यह लेकिन क्या अभी तक सुख प्राप्त कर सके? नहीं क्योंकि हमारी खोज, हमारा प्रयास विवेकपूर्ण नहीं है। हम जितना, भी सुखी होनेके प्रयास कर रहे हैं उसका परिणाम उल्टा ही होता है। कारण यह है कि हमारी खोज पर पदार्थों में है यदि हम स्वयं को देखें समझें, अनुभव करें तो यही पावेंगे कि सुख कहीं नहीं आनन्द किसी स्थान पर न मिलता है न विकता है किन्तु मुझमें स्वयंमें ही आनन्द लबालब भरा हुआ है। जिसकी प्राप्ति भटकते रहनेके कारण मैं आज तक न कर सका, हम आज तक दुःखको सुख मानकर भोगते रहे। विचारो तो ये जो पतंगा कीड़ा, मकोड़ा, वनस्पति आदि जीव हैं, जिनकी हत्या करते, जिनको नष्ट करते हुये, प्रायः, लोगोंको जरा भी संकोच नहीं होता। ये सब हमारी ही तो पर्याय हैं। और यदि यह दुर्लभ मनुष्यकी पर्याय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



पाकर भी हम नहीं आत्माको पहिचान सके तो फिर इन चौरासी लाख योनियोंमें वैसा ही भटकना पड़ेगा। मानव जीवन पाया अतः हम धन्य हैं। हम बोल भी सकते हैं। अपना दुख व दर्द बता भी सकते हैं सेवा भी कर सकते हैं। अपनी इच्छा व्यक्त भी कर सकते हैं। किन्तु इन गाय, भैंस आदि को तो देखो कितना ही दुःख हो, कुछ भी कैसी परिस्थिति क्यों न हों भाव भी व्यक्त नहीं कर सकते ! चौरासी लाख योनियोंमें भटकनेके बाद दुर्लभ मानव पर्याय पाकर भी हम नहीं चेते तो फिर हमारा कल्याण नहीं। पूर्व जन्ममें अच्छे कर्म किये थे इस पर्याय को प्राप्त करनेके लिये, और इसको प्राप्त भी कर लिया है तो भइया ! इसको योंही न जाने दो। आत्मकल्याण करो ! सबसे बड़ी यही बात है कि अपनी परिणति ठीक करो हमारा ज्ञान व आचरण ठीक रहा तो इस पर्यायमें भी सुख है ओर अगली पर्यायमें भी सुख है। और यदि हमारा ज्ञान व आचरण शुद्ध नहीं तो अगला भव तो दुखमय है ही और इस भवमें भी दुःख ही दुख है। भैय्या ! भगवान तो चेतनामय, आनन्द स्वरूप, चिदानन्द है, आनन्द ही आनन्द स्वरूप वाले हैं, ज्ञान ही ज्ञान स्वरूप वाले हैं। ऐसे वे ज्योति स्वरूप हैं जो अपने आनन्दमें रहा करते हैं। बस यही विचारो कि जब सर्व जीवोंका भी यही स्वरूप है व सब जीवोंमें भगवान बस रहा है। हम भी ज्ञान व आनन्दमय हैं। इस आनन्दका विकास धर्मके प्रसादसे होता है। धर्मके कार्यों में सबसे पहिले जीवदयाको ही धर्म बताया है। व्यवहारमें सबसे बड़ा और सबसे पहिला मानव धर्म है जीवमात्र पर दया करना। जिसके अन्दर दया नहीं वह आदर नहीं पाता, और जिसके अन्दर सबके प्रति दया भाव है वह आदर पाता है, शोभा पाता है, इज्जत पाता है ! अतः दया ही हमारा प्रथम धर्म है यही विचार करना चाहिये।

मूल दया तो अपने व सबके चैतन्य स्वरूपको देखनेसे आती है सब जीव भगवानके स्वरूप समान चेतनाशक्ति–युक्त हैं। किन्तु मायाके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


प्रपञ्चसे दुखीहो रहे हैं। मायाके आतंकसे ही तो अभी मनुष्य हैं तो फिर पशु पक्षीकी पर्याय हैं। उन खोटी स्थितियोंसे बचनेके लिये अपना आचरण सुधारनेके लिये अच्छा मार्ग सत्संग अपनाना चाहिये; कुमार्ग गमनसे तो कोई भी सुखी नहीं होता जैसे कि जुआ खेलते हैं रुपया पैसा लगाकर, किन्तु क्या वे उसमें सुख शान्ति पा लेते हैं। नहीं दुःखी ही होते रहते हैं, क्योंकि जहाँ लालसा है वहीं दुःख है! पाण्डवोंको देखो जुएके कारण ही तो वे हीन बन गये, द्रोपदीका अपमान सहन करना पड़ा। यह सब किसके कारण ? एक जुयेके ही तो कारण और क्या कारण था इसके अतिरिक्त। अतः दुःखके सिवाय इन व्यसनोंमें रखा ही क्या है। इसी प्रकार मासभक्षण, मदिरापान, चोरी करना, शिकार खेलना, परस्त्रीसेवन व वेश्यागमन ये व्यसन भी क्लेश ही क्लेशसे हुये हैं।

इन सात व्यसनोंका तो कमसे कम प्रत्येक प्राणीके त्याग होना चाहिये। यदि इन सात चीजोंका त्याग कर दिया तो जीवन सुखमय हो जावे। मांस भक्षणमें कितनी निर्दयता है। देखो अपने शरीर में यदि कांटा लग जाता है या कोई चुटकी काट लेता है तो कितना दुख होता है। और जिसका मांस खाया जाता है उसे तो जानसे ही खतम कर दिया जाता है तब ना मास होताहै। बताइये कितना बड़ा स्वार्थ है कि मास भक्षियोंको तो जरासा कल्पित स्वाद, और यहां इसके प्राणोंकी आहुति ! उन्हें कितना दुःख नहीं होता होगा अतः भय्या सोंच विचार कर इस व्यसनका त्याग करही देना चाहिये। मनुष्यका भोजन भी मांस नहीं है। बच्चेको भी शुरूमें यदि मांस दोगे तो वह वमन कर देगा। प्रकृतिविरुद्ध भी तो बात है यह। शराब पीनेसे बेहोशी हो जाती है, जानने देखनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। उसका विश्वास भी फिर कोई नहीं करता ! चोरी करना, जुआ खेलना, मांस खाना, शिकार खेलना, मदिरा पीना, परस्त्रीसेवन करना, वेश्यागमन करना। इनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



भी द्वारा होनेवाली बरबादीको विचार करके जीवन पर्यन्त नियमपूर्वक इन व्यसनोंका त्याग करना चाहिये। जिनको अपना ध्यान भगवानमें लगाना है उन्हें तो इन्हें तुरन्तही त्यागना चाहिये। क्योंकि इन व्यसनोंसे जीवका जो पतन होता है उससे यह पतित प्राणी प्रभुके बिलकुल विमुख हो जाता है। आज जो हमारी स्थिति है यह पुण्यके प्रताप ही से तो है! तभी तो आज हम मनुष्य योनिमें हैं। अतः अब भी हमें अपना धर्म न छोड़ना चाहिये। यह जो शरीर है जिसपर हम गर्व करते हुये नहीं अघाते हैं, क्या है यह? केवल खून, पीव, मवाद आदि दुर्गन्धोंका ही तो पिण्ड है, जिसमें नवद्वार तो प्रकट बहते ही हैं। और रोमके करोड़ों छिद्रोंसे मल झरता है कुछ भी तो इसमें सार नहीं है। फिर क्यों इससे इतना मोह, क्यों इतना गर्व, इस नाशवान वस्तुका; जिसके खातिर मासभक्षण मदिरापान आदि जैसे घोर पाप किये जाते हैं।

मदिरा (शराब) के पीनेवालोंका मनुष्य तो निरादर करते ही हैं; कुत्ते तक भी मुखमें अशुचि क्षेपण कर निरादर कर डालते हैं। चोर को तो सदा शल्य ही रहती है वह तो छुपा छुपा ही रहना चाहता है। उसे तो कोई पास भी नहीं बैठने देता। शिकार खेलना तो अतिनिर्दयता है। परस्त्रीसेवन तो अनेक विपदाओंकी खान है। परस्त्रीगामी पराधीन दीन बन जाता है उसके तो प्राण भी नष्ट कर दिये जाते हैं। वेश्या तो नरककी साक्षात् दूती है। ये व्यसन लौकिक आपदा तो पैदा करते ही हैं किन्तु इन व्यसनों से ऐसा अधार्मिक जीव हो जाता है कि वह न तो प्रभुके भजनके योग्य रहता है न धर्म की बात समझनेके योग्य रहता है और न शान्तिका जरा भी पात्र रहता है। व्यसन तो मुफ्त ही सिर पर ली हुई विपदा है।

इन सात व्यसनोंमें से यदि एक भी साथ लग गया तो न तो वह प्राणी आरामसे बैठ सकता है न चार व्यक्तियोंमें इज्जत ही पाता है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कोई उसका विश्वास नहीं करता, सब उसे झूठा समझने लगते हैं। परमार्थमें तो वह कोसों दूर रह जाता है। अतः इन सात व्यसनोंका त्याग करना ही चाहिये। आत्माके हितके लिये क्या करना चाहिए। यह अच्छी प्रकार विचार कर अच्छी बातोंको धारण करो और बुरी आदतको छोड़दो। अपनी आजीविका न्यायपूर्वक करें और किसी का जी तक न दुखावें। बस यही विचारें कि मेरे कारण किसी को दुःख न पहुंचे। उपकार और त्यागकी ही तो महिमा है। जितना पर उपकार करोगे और स्वरूप दृष्टि रख जितना सांसारिक पर पदार्थोंका त्याग करोगे उतने ही महान बनोगे। जिन्दगी का सार यही है।

जो जिन्दा है वह मरेगा तो अवश्य ही, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु वह मरण अमर हो ऐसा प्रयास करना चाहिए; सर्वप्रथम इन सात व्यसनोंको त्यागकर अपनी आत्माके कल्याणके मार्गमें लगें, अपने को पहिचाने। यदि इस प्रकारका सच्चा ज्ञान प्राप्त कर आचरण किया तो जीवन सफल हो जावेगा इन सात व्यसनोंके त्यागसे धर्मका मर्म समझनेकी योग्यता आती है। व्यसनसेवी धर्मकी बातका स्पर्श भी करनेका पात्र नहीं होता अतः यह तो सर्व प्रथमही आवश्यक है कि सप्त व्यसनोंका त्याग करें ही। धर्म जिसके कि धारणसे क्लेश नष्ट होते हैं वह बाहर नहीं, आत्मवस्तुमें ही है। वस्तु अपनेमें जिस स्वभाव को धारण करता है उसका नाम धर्म है। जैसे बिच्छूका धर्म काट लेना है, मानवका स्वभाव रक्षा करना है। अग्निका धर्म जलाना है इस तरह लोक व्यवहार की प्रसिद्धिसे भी यही सिद्ध है कि वस्तुके स्वभावका नाम धर्म है।

एक उदाहरण है कि एक नदीमें बिच्छू बह रहा था। एक मनुष्य उसको निकालनेके लिए निकला। खड़े हुए आदमी बोले कि भय्या उसको निकालनेसे क्या फायदा, वह काट लेगा। किन्तु वह नहीं माना। बिच्छुके काटनेपर भी उसे बाहर निकाले। काटनेसे गिर जाय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



फिर भी निकाले। निकाल कर बोला–देखो भाई, इसका स्वभाव काटना है और मेरा स्वभाव है रक्षा करना। जब यह छोटा सा प्राणीं अपने स्वभावको नहीं छोड़कर उसका बराबर पालन किये जा रहा है, तब मुझे तो सोंचने समझनेकी शक्ति भी मिली है फिर मैं क्यों अपने धर्मको छोड़ूं। यही तो परीक्षा है, विपत्तिके उपस्थित होनेपर भी स्वभावको न छोड़ना ही धर्म है।

धर्म कहो, स्वभाव कहो, शक्ति कहो एक ही बात है। जिसमें जानने, देखनेकी शक्तिहो उसे जीव कहते हैं। जो शुरूसे लेकर अन्त तक बना रहे, न छुटे उसे स्वभाव कहतेहैं। ऐसे स्वभावमें तन्मय वह आत्मा है यह कभी नष्ट न होने वाली वस्तु है। वह स्वभाव है अपनी आत्माका चैतन्यस्वरूप, सहजज्ञान, चिदानन्द। जिसमें चढ़ाव उतार पायाजावे वह स्वभाव नहीं बन सकता जैसे क्रोध करना- मान करना आदि यह स्वभाव नहीं बन सकता। आखिरकार क्रोधकी मुद्रा कितनी समय तक बनी रह सकतीहै आखिर तो अपने वास्तविक स्वरूपमें आना ही होगा। शरीर भी जीवका स्वरूप नहीं, क्योंकि यह भी नष्ट होने वाली चीज है। जो पैदा हो व नष्ट हो या जिसमें उतार चढ़ाव पाया जावे वह स्वभाव नहीं कहा जा सकता। घमण्ड भी जीवका स्वभाव नहीं, क्योंकि इसमें भी उतार चढ़ाव पाया जाता है। माया, तृष्णा, लोभ ये सब जीवके स्वभाव नहीं होसकते। क्योंकि इनमें नित्यपना नहीं पाया जाता! अतः जो जाननेकी शक्ति है, चेतना है, चैतन्य स्वरूप है इसमें उतार चढ़ाव नहीं है अतः चैतन्य जीवका स्वभाव है। यही जीवका धर्म कहलाया। आत्मधर्मका पालन यही है कि ऐसी दृष्टि बनावे कि मैं तो ज्ञानशक्तिमात्र हूं! तभी भगवानके स्वरूपके दर्शन हो सकते हैं। वास्तविक दृष्टिसे भगवानके स्वरूपकी तभी कल्पना की जा सकती है। और जो नाना भगवानके स्वरूपोंकी कल्पना कर रहेहैं ये सब व्यर्थ हैं। यदि प्रभुके दर्शन होंगे तो अपनें स्वरूपमें ही होंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हम अपने आप को सही समझ लेवेंगे तो भगवानके स्वरूपका पता लग जावेगा अपनेको ज्ञाता, द्रष्टा समझ लेनेपर ही आत्माके अपने सहज स्वरूपके दर्शन हो सकते हैं। उस पावन दर्शनमें ही अनुपम आनन्द है ऐसा आनन्द नाना प्रकारके भोजनोंमें, इज्जत, ऐश्वर्य आदिमें प्राप्त नहीं होगा।

ये बाह्य पदार्थ तो आकुलताके ही देनेवाले हैं। इन वैभवादिसे क्या लाभ? ये सब तो विपदा ही देने वाले हैं जीवका स्वभाव तो चैतन्य स्वरूप है। यह जो हमारी आज शरीरकी इज्जत करते हैं सब स्वार्थवश कर रहे हैं। सबको समदृष्टिसे देखता हुआही सत्य, समान व्यवहार कर सकता है। मेरा स्वभाव तो मायासे परे है ऐसा विचार करता हुआ अपने आपका निर्णय करेंगे, तभी अपने आपके, अपने सहज स्वभावके दर्शन पा सकते हो! मानव अनेक धर्मोंकी विधियों के कारण इस सन्देहमें पड़ जाता है कि वास्तविक सत्य क्या है। क्योंकि सभी अपने-अपने धर्मका प्रचार कर रहे हैं, कोई कुछ कहता है। तो कोई कुछ कहताहै। अत: इसमें यह पता नहीं लगता कि सत्य क्या है और असत्य क्या है? जांयें तो किसके बताये मार्गपर जायें।

भैया! ऐसा सन्देह हो तब सबकी बातोंको छोड़ दो और ऐसा छोड़ दो कि कुछ कल्पना ही न आवे, और सर्व समागमको असार तो समझ ही लिया है सो उस सबको भी अपने उपयोगमें न आने दो। फिर देखोगे उस परम विश्राममें शुद्ध ज्योतिर्मय आत्मस्वभाव। इस आत्मदर्शन के साथ जो आनन्द पावोगे वह सर्वोत्कृष्ट है। और फिर ऐसी स्थिति पानेके लिये लालायित होकर उपयोग बनाओगे। ऐसे पुरुषार्थ करनेका नाम ही धर्मका पालन करना है।

धर्मसाधन ही जीवका सत्य शरण है। इसकी साधना करके अपना जीवन सफल करना चाहिये। धर्म है समता, जहां मोह और क्षोभ नहीं है वही धर्म है। मोह और क्षोभका अभाव होता है शुद्ध ज्ञानस्वरूपके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उपयोगसे । अतः शुद्ध ज्ञानस्वरूपके चर्चक अध्ययनसे, मननसे, चिन्तनसे, अनुभवनसे निरापद सत्य विश्राम पाना ही परमहित है।

बन्धुवर! हमसब ज्ञानपिण्ड पदार्थहैं और शान्तिके प्यासे हैं। शान्तिका का सम्बन्ध ज्ञानसे है। ज्ञान सामान्यकी अपेक्षा देखो तो मुझ अशान्त में व शान्त प्रभुमें कुछ भी अन्तर नहीं किन्तु ज्ञान विशेपकी अर्थात् ज्ञानपरिणतिकी अपेक्षा देखो तो प्रभुमें व प्रभुमें अन्तर है। हम मति-श्रुत ज्ञानीहैं। इन्द्रिय व मनसे जो ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं तथा पश्चात लिखने, पढ़ने, विचारने आदिसे जो उसी पदार्थमें मति-ज्ञानसे विशिष्ट ज्ञान होताहै उसे श्रुतज्ञान कहतेहैं। केवलज्ञान जितने विषयको जानताहै उतना ही विषय उत्कृष्ट श्रुतज्ञानका है किन्तु अन्तर केवल इतना है कि श्रुतज्ञान परोक्षको जानता है किन्तु केवल ज्ञानी सब को जानताहै !ज्ञान जिसके पासहै वह निमित्त मिलनेपर वैराग्यको प्राप्त हो मुक्त हो जावेगा ! अशान्ति समाप्त करनेका उपाय आत्मामें ज्ञान-का उपयोग करना है ! प्राणीको कभीभी अति ज्ञानका अभिमान नहीं करना चाहिये ! प्राणी जिस-जिस प्रकार अपने कर्मोंसे दूर होता जाता है उसीप्रकार ज्ञानकी वृद्धि होती जातीहै। जीवनका सबसे बड़ा शत्रु वह है जिससे वह मोह रखताहै ! इस प्राणीकी ऐसी विचित्र दशा है कि जिस वह मोह रखेहैं वह यदि अन्याय या अनीतिका सहारा लिये हुये है तो भी उसी का पक्ष करता है। एक जमाना ऐसाभी था यदि अपना ही पुत्र आदि कोई भी अन्याय आदि करताथा तो न्यायका ही अवलम्बन किया जाताथा, बिना किसी भेद भावके। किन्तु आज दशा अति शोचनीय हो गई है। अतः मोहमें पड़कर प्राणी दुर्गतिके कारण बनतेहैं। इस संसारमें अपने आत्मज्ञानके अतिरिक्त कोई भी संसारसे मुक्ति नहीं दिला सकता, मुमुक्षुआत्माके स्वभावको शरीरसे पृथक समझे। जो बाहय कर्म हैं उनको करना पड़े तो भी मुमुक्षको आत्माके स्वभावको समझते रहना चाहिये ! अपनेको चेतनाशक्तियुक्त समझना चाहिये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


तथा विचार करना चाहिये कि परिग्रह व ममता ही विपदाके कारण हैं ! यदि प्राणी तीन बातें धारण करें तो उन्हें दुःखका कारण दूर करते देर न लगेगी ! (१) चैतन्य स्वभावकी प्रतीति (२) अन्याय सहन मत करो ! (३) प्रेमका व्यवहार करो। कभी भी लोभादिमें पड़कर यदि अन्याय सहन करना पड़े जिसे आत्मा स्वीकार नहीं करती, तो स्वीकार मत करो। सर्वदा सब प्राणियोंसे प्रेमका व्यवहार करना चाहिये। नम्रतासे सबसे व्यवहार करना चाहिये ! इन सब बातोंके होते हुए भी कभी भी प्राणीको न अपनेको तुच्छ समझना चाहिये तथा न ही किसी बातका अभिमान करना चाहिये ! थोड़ा ज्ञान होनेपर ही प्राणी अपनेको बहुत बड़ा समझने लगता है, किन्तु जैसे-जैसे वह ज्ञान प्राप्त करता जाता है वैसे ही वह अनुभूति करता है कि इतने विशाल ज्ञानके समक्ष मेरा ज्ञान बहुत ही कम है।

देखो भैया ! कृतान्तवक्र सेनापतिने राम सम्बन्धी मोह वर्जित कर सब कठिनाइयाँ आसान समझीं ! संसारमें यदि प्राणीका सबसे बड़ा शत्रु है तो वह मोह माया है ! इससे विरक्त होकर हम अपनी ओर आयें। सुख यहाँ मिलेगा। हमें केवल दो बातें ही करनी हैं (१) बाह्यमें ऐसी न्याय प्रवृत्ति जिससे मेरी अन्तरंग, शुद्ध वर्तना में बाधा न आवे, (२) ज्ञानानन्दघन निज आत्मतत्वकी दृष्टि। इस ही दूसरी बातमें प्रभुकी भक्ति भी अन्तर्निहित है।

रागाभावः स्वयं स्वाप्ता-वाप्तस्वो हि स्वभाववत्।
स्वे स्वं परं नमस्कृत्य, स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्। १-१।

इसमें नमस्कार किया गया है। लेकिन किसको ?—चूंकि प्राणी वस्तुतः स्वयं स्वयं को ही नमस्कार करता है। और परमात्माको भी नमस्कार करता हो तो वह भी अपनेमें ही किया जाता है। सो परमार्थसे नमस्कार खुदकोही कियाजा सकता है। यहाँभी खुदही को नमस्कार है। नम्रीभूत होनेको नमस्कार कहते हैं। नमना या झुकना नमस्कारके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



द्योतक हैं। अपने आपके स्वरूपकी ओर नमना भी अपनेसे ही होता है।

आत्माका स्वरूप परमात्मा के सदृश है। आत्माका एवं परमात्मा का स्वभाव चैनन्य स्वरूप है। भगवानका जो विकास है वैसा ही होनेका सब जीवोंका स्वभाव है अपने आपको पा लेनेका नाम' स्वयं को नमस्कार है। अपने आपका दर्शन भी स्वयंमें ही होता है। हम लोग जो जो मन्दिरोंमें भगवानकी मूर्तिके सामने दर्शन करते हैं सो जिसका दर्शन करना चाहते हैं उसका दर्शन भी चक्षुसे नहीं होता ज्ञानसे ही दर्शन होगा। चक्षुसे तो केवल स्थापित मूर्तिका आकार ही दिखायी देगा। समवशरणमें भी परमात्माका दर्शन आँखोंसे नहीं होगा वहाँ भी ज्ञानसे दर्शन होंगे। वहाँ भी अन्तरंगमें ही दर्शन होंगे। परमार्थसे तो भगवानके स्वरूपको ज्ञेय बनाकर बने हुए ज्ञेयाकारसे परिनत निज आत्माके ही दर्शन होते हैं।

वैसे तो समवज्ञारणमें भी निराकार परमात्मस्वरूपका दर्शन नहीं होता किन्तु साकार शरीरका ही दर्शन होता सो ऐसे साकार शरीरके ही आंखोंसे दर्शन होंगे। जैसे यहाँपर मन्दिरमें भगवानकी मूर्तिके दर्शन होते हैं। किन्तु जब तक ज्ञानसे दर्शन नहीं होगा तब तक कोई लाभ नहीं। अतः अपने आपकी प्राप्ति होनेपर ही परमात्माका नमस्कार बनता है। अपने आपकी प्राप्तिका उपाय रागद्वेषादिका अभाव होना है। रागद्वेष अहंकार आदि परिणाम ही परमात्माके दर्शनमें बाधक बनते हैं। अपने आपको जान लेनेके बाद ही परमात्मस्वरूप की समझ व अपनी सच्ची अनुभूति होती है। इस अनुभूतिका बाधक है अहंकार। जब तक अहंकार रहता है तब तक परमात्माके दर्शन नहीं होते। भैया एक देशमें एक नककटा रहता था! उसने सोचा कि मुझे सब कोई नककटा कहकर चिड़ाते हैं ये चिढ़ा न सके इसका कोई उपाय निकालना चाहिये। बहुत सोचनेके बाद उसने यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि मुझे साक्षात् प्रभुके दर्शन होरहे हैं। मैं इस नाककी नोंक व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


छाया नहीं होनेसे साक्षात् भगवानके दर्शन कर रहा हूं ! अतः उसकी इस बातको देखनेके लिए दूसरे पुरुषने भी अपनी नाक कटा ली, तब ईश्वरके दर्शन न होनेपर प्रश्न किया कि भैय्या मुझे तो ईश्वर के दर्शन नही हो रहे हैं तब उस नककटेने कहा कि अब तुम्हारी नाक तो कटही चुकी हैं अतः यह कहना प्रारम्भ करदो कि मुझे ईश्वर-के दर्शन होरहे हैं। अन्यथा दुनिया वाले तुम्हें हास्यका पात्र बनायेंगे। इस प्रकार सब ग्रामवासियोंने अपनी नाक कटा ली तो राजाने सबको समरूप नककटा देखकर अपनेको उनसे भिन्न प्रतीत किया तथा कुरूप अनुभव किया। राजाने पूछा कि भाई आप सब तो बड़े रूपबान हैं मैं ही क्यों कुरूप हूं, तब लोगों ने उत्तर दिया कि राजन् ! हम लोग भी इसी तरह नक्कू थे और इसी कारण भगवानके दर्शन नहीं होते थे। जबसे यह नाक सफा हुई तबसे भगवानके दर्शन होरहे हैं। राजा भी ईश्वरके दर्शन करनेके लिये अपनी नाक काटना चाहता था कि उस प्रथम नककटेने कुछ कहनेके लिये क्षमा मांग कहना प्रारम्भ किया कि हे नाथ ! नाक का लेनेपर ईश्वरके दर्शन नहीं होंगे अपितु मुझे लोकके हास्यसे बचनेके लिए यह उपाय सूझा और इस प्रकार सबों ने अपनी नाक कटा डाली !

अतः सबसे प्रथम प्राणियोंको अपने रागद्वेषादि परिणामोंको दूर करना चाहिये ! ये रागद्वेषादि-अहंकार आदि परिणाम भगवानका दर्शन नहीं करने देते न ही तब तक, जब तक कि ये बुरे परिणाम दूर न हों, आत्माके दर्शन करने देते ! आत्मामें छिपे तात्विक आनन्द का स्वाद हो जानेपर विषय कषाय आदि के संक्लिष्ट परिणामोंमें पड़ना कोई नहीं चाहता ! सदा विचार करना चाहिये कि जैसा चैतन्यस्वभाव अर्हन्त आदि में है वैसा ही मुझमें है तथा जैसा मुझमें है वैसा ही अर्हन्त आदि में है।

आत्मा रागद्वेषादि बढ़ाकर जो अनिष्ट करता है वह अपनाही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



करता है तथा जो दान आदि द्वारा इष्ट करता है वहभी अपने लिए ही करता है। दूसरोंका न भला कर सकता है न बुरा ! यह जीव अपना स्वरूप बनानेके अतिरिक्त कुछ नहीं करता है। बुरे कर्म करनेसे हम अपनेको ही नष्ट करते हैं दूसरोंका कुछ नहीं। यह आत्मा अपना ही काम करती है दूसरोंका कुछ नहीं, जैसे दर्पणके पीछे दो बालक खड़े होकर क्रिया करते हैं। एक द्वारा की गयी क्रियाको दर्पणमें देख कर ही दूसरा सबकुछ बताता जाता है वैसे ही अपनेको पदार्थके अनुसार ही परिणित करके वर्णन करते हैं लोग। प्राणी रुपया पैसा वैभव को ही सब कुछ समझता हैं जबकि ज्ञानके समक्ष सबकुछ व्यर्थ है। देखो सर्वत्र महिमा ज्ञानकी ही है। सब लोग ज्ञानको ही जानते हैं और ज्ञानको ही बताना चाहते हैं। ज्ञानदानकी बहुत बड़ी महिमाहै। किसी भी प्रकार दूसरोंको ज्ञानका दान देना चाहिये चाहे पुस्तकें वितरण कर, अथवा रुपया पैसा देकर पढ़ाई करादो या स्वयं पढ़ाओ आदि। सोचो जब हम दूसरोंका कुछ नहीं कर सकते तब भगवानके लिए क्या कर सकते हैं जिस प्रकार बम्बई घूम कर आये हुये प्राणीको बम्बईका सम्पूर्ण दृश्य अपनी आँखोंके समक्ष ही दृष्टि गोचर होताहै उसी प्रकार जिसने अपनेको पहिचान लिया उसे अपनेमें ही प्रभु नजर आते हैं। विपरीत अवस्थामें दूर नजर आते हैं।

जिस प्रकार शीशे (दर्पण) में हाथी जैसा विशाल प्राणी भी दिखाई देताहै उसी प्रकार ज्ञानमें सबकुछ प्रत्यक्ष झलकता है। यदि ये प्राणी किसीसे राग करता है तो भी अपने लिए ही, द्वेष करता है तोभी अपने लिएही। तात्पर्य यह जो कुछ करता है सब कुछ अपने लिएही करता है दूसरोंका कुछ नहीं। मैं नमस्कार करता हूं इसमें चाहे किसीको भी नमस्कार करनेका उद्देश्य बनाया है किन्तु है सबकुछ अपने लिए ही। भगवानको नमस्कार क्या दर्शकोंको दिखानेके लिए करते हैं। मन्दिरमें जाकर नमस्कार करना दिखावा करना हो सकता है परन्तु अपनेमें ही अपने द्वारा अपनेको अपने लिए अपने आप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अपने उद्धारके लिए नमस्कार किया जाता है। नमस्कारका तात्पर्य है मैं अपनेमें, अपने लिए अपने आप समा कर सुखी होऊं।

ज्ञान शक्ति दर्शन शक्ति चरित्र शक्तिकी तरह ही आनन्दशक्ति है जो जो अनुभूति बनती है वे सब अपनेसे ही बनती हैं जब यह प्राणी आत्मानन्दका स्वाद एक बार आस्वादन करलेताहै उसे अन्य सब कुछ व्यर्थ लगता है। विलक्षण है ये आत्मानन्दकी अनुभूति। उस स्थितिमें प्राणी सोचता है कि मेरी यह आत्माके आनन्दकी अनुभूति निरन्तर बनी रहे अन्य कुछ नहीं। परमार्थसे अध्यात्मतत्वको ही नमस्कार किया जाता है। समवशरणमें भी भगवानकी मूर्ति ही नजर आती है। मन्दि-रोंमें जो मूर्ति है वह स्थापित मूर्ति है। आंखोंसे देखने पर मुद्रा ही नजर आती है। ज्ञानमय ही भगवान हैं। सो अपनेमें मैं अपनेको नमस्कार करता हूं और पर परातपर आत्माको भी नमस्कार करता हूं। अपनी प्राप्ति होना ही अपना नमस्कार है। अपने आत्मतत्वकी प्राप्ति होनेपर रागका स्वयं अभाव होने लगता है। जिसने अपने आपको प्राप्त किया है ऐसा वह परमात्मा भी मेरे स्वभावके अनुरूप हैं अतः मैं अपनेमें अपने आपको व परमात्माको नमस्कार करके अपने लिये अपने आपमें स्वयं सुखी होऊं।

यादृक् सिद्धात्मनो रूपं तादृग्रूपं निजात्मनः।
भ्रान्त्या क्लिष्टस्तु संसारेस्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥ १-२।

मुमुक्षु प्राणियोंको विचार करना चाहिये कि जैसा सिद्ध प्रभुका स्व-रूप है वही मेरा है जैसा मेरा स्वरूप है वही सिद्ध प्रभुका है। स्वयंके स्वभावको लिए हुए सत्तावाला वही मैं हूं! जैसे गरम जल व ठन्डा जल, इन दोनों प्रकारके पानी का स्वभाव ठण्डा है! उसी प्रकार जैसा स्वभाव सिद्धोंका है वही मेरा है! मैं संसार पर्याय में होते हुए भी सिद्धोंके समान स्वभाव वाला ही हूं! ऐसा विचार कर सिद्धोंकी उपासना करनेसे लाभ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



होता है, अन्यथा कोई उनका दर्शन ऐश्वर्य धन-दौलत के लिए तो किया नहीं जाता है! उनमें कर्ता व दाताकी बुद्धि जीवोंको नहीं करनी चाहिये। हे प्राणियों! सिद्धोंका स्वरूप तो अपना स्वरूप समझनेके लिए दर्पणके समान है जिस प्रकार दर्पणको देखकर अपने चेहरेका भाव होता है कोई भी उस दर्पणका चेहरा देखनेके लिए दर्पण नहीं देखता उसी प्रकार प्रभुको देखकर हमें अपने स्वरूपको समझना चाहिये। नहीं तो फिर दर्शन करनेसे क्या लाभ! जब हमें यही नहीं पता कि हम दर्शन क्यों कर रहे हैं। उनसे फलकी वाञ्छा रखकर दर्शन नहीं करना चाहिये क्योंकि वे कर्ता, दाता तो हैं नहीं। भगवान तो पूर्ण विकासमय गुणपुञ्ज हैं।

उनका दर्शन आकारमें नहीं होता क्योंकि वे तो शुद्ध व पूर्ण ज्योति-पुञ्ज हैं! जिनके कि ध्यानमें सारा विश्व प्रकाशित होता है। भगवान का नाम नहीं होता अपितु नाम तो पर्यायका होता है, जो वस्तु व्यव-हारसे आवे उसका नाम रखा जाता है! जो भगवान है उसका नाम नहीं और जिसका नाम है वह भगवान नहीं, भगवान तो उपासनाका विषय है। भगवान एक दूसरेका कार्य करनेवाला नहीं है तथा ऐसा ही रूप अपनी आत्माका भी है। मैं एक वस्तु हूं तब अवश्यमेव कोई शक्तियुक्त हूं क्योंकि जो सत् है उसमें उत्पाद व्यय अवश्य होंगे। कहा भी है कि—"उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तं सत्"।

उत्पाद—व्यय—ध्रौव्य रहित कोई द्रव्य नहीं है। मेरे अज्ञानपर्यायका व्यय होकर ज्ञानपर्यायका उत्पाद होकर निजस्वभावमें आनन्द वर्तेगा। अतः अपने आपमें विश्वास बना लेना चाहिये कि जो मैं हूं वह भगवान है तथा मैं वही हूं, जो भगवान है—"मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान"। इससे आत्मबल बढ़ता है। इससे ज्ञाता दृष्टा रहनेकी शक्ति प्राप्त होती है, चिन्ताएं दूर होती हैं। जैसे एक कहावत है कि एक क्षत्रियका बालक था व एक बनियेका बालक था। बनिये का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



बालक हृष्ट पुष्ट था क्षत्रियका कमजोर ! दोनोंमें लड़ाई हो गयी। बनियेका बालक क्षत्रियके लड़केको नीचे गिरा कर ऊपर चढ़ बैठा ! क्षत्रियके बालकने उससे पूछा कि भैया तुम किसके लड़के हो, उसने बताया कि मैं तो बनियेका लड़का हूं, इतना सुनना था कि क्षत्रिय-पुत्रको बल व जोश आया और झट ऊपर आ गया ! सो भैया, अपना स्वरूप सिद्धोंके स्वरूपके समान समझनेसे आत्मबल बढ़ता है। और एक विशेष प्रकारका आनन्द प्राप्त होता है।

आपत्ति, विपत्ति, क्लेश, चिन्ता, यह सब ऐसा सोचनेसे कि मैं वही हूं जो भगवान हैं तथा जो भगवान हैं वह मैं हूं, नष्ट होजाती हैं। सदा सब प्राणियोंसे समताका भाव रखना चाहिये जो अनुकूल हैं उनमें भी यही प्रतीति करनी चाहिये कि सब सुखी होंवें तथा प्रतिकूल प्राणियोंमें भी समता का भाव रखना चाहिये ! प्रतिकूल प्राणियोंमें करुणा भाव पैदा करके समता रखनी चाहिये क्योंकि ये सभी जीव चैतन्य स्वभाववाले ही हैं। यह प्राणी संसारमें रहता है किन्तु उसमें संसार नहीं रहे तो यही जयका साधन है। यह संसारसे बाहर कैसे रहे किन्तु फिरभी संसारमें रहते हुए भी संसारसे दूर रह अपने आपकी आत्माका कल्याण करें। जैसे नाव पानीमें रहती है, चाहे वह समुद्रका पानी हो या नदी का, किन्तु नावमें पानी नहीं। नावमें पानी आजानेसे नावका ही अस्तित्व समाप्त हो जावेगा।

हम यदि वास्तविक स्थिति देखें तो पायेंगे कि हमलोग अपने सम्बन्धियोंसे तथा जिनसे मोह रखते हैं उनसे ठगे जारहे हैं तथा अपनी पर्याय इनके वश हो बिगाड़ रहे हैं। अतः सर्वदा यही विचार करना चाहिये कि मेरा स्वरूप सिद्धोंके समान है। यही आत्माका धर्म है ! इसके अभावमें ही हमलोग मन्दिर जाना, सामायिक करना आदि पुण्यके कार्य करते हैं ताकि उपयोग निजमें लग जावे ! सदा विचार करना चाहिये कि "भ्रांत्या क्लिष्टस्नु संसारे" मैं भ्रममें पड़कर संसारमें भ्रमित हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



रहा हूं इन सबसे हटकर क्यों न मैं अपनी आत्मामें, रमकर सुखी होऊं ! इसे द्रव्यगुण पर्यायमें कहते हैं ! द्रव्यकी अपेक्षा मैं और सिद्ध एक समान हूं ! सिद्धके गुण और मेरे गुण समान हैं ! यदि अन्तर है तो केवल पर्यायका है। उनकी पर्याय शुद्ध व निर्मल है और हमारी मलिन है।

अन्तरदृष्टिसे देखो तो सभी जीव शुद्ध ज्ञायकस्वरूप एकरस है। यही विश्वास अमृत है ! हमें,—मैं अमुकका पिता हूं किसी का पति हूं, धन-शालीहूं आदि संस्कारोंको ज्ञानरूपी जलसे धोकर नष्ट करना चाहिये ! मैं ज्ञानमय हूं इस विचारके पश्चात् बाकी सब माया है मैं तो अनन्त आनन्दका विधान हूं फिर क्यों थोड़े आनन्दके लिए छट-पटाता रहूं, क्यों कल्पना कर संसारमें भटकता रहूं।

अनेक कठिनाइयोंसे प्राप्त हुए मानव जीवनको विषयकषायोंमें नष्ट नहीं करना चाहिये ! अपनी ही सीधी साधी बात न समझ कर प्राणी भ्रम करते हैं कि मैं अमुक शहरका रहने वाला हूं अमुक जाति का हूं ? इन सब संस्कारोंको कभी न कभी तो अवश्य ज्ञानरूपी जलसे धोना पड़ेगा ! मेरा स्वभाव तो भगवानके स्वभावकी तरह है अतः वाह्य भ्रमोंमें पड़ना व्यर्थ है। देखो भैय्या—भगवानके पास क्या है केवल ज्योतिपुञ्ज आत्माको छोड़कर। फिरभी सब प्राणी उन्हें नमस्कार करते हैं, फिर क्यों न हमभी उनके समान गुण धारण करें ? क्यों न वैसा ही बना जावे ? इतना ज्ञान भी लेना सन्तोषजनक होता है कि मैं सिद्ध भगवानके स्वरूपके सदृश हूं ! यदि उपयोग नहीं लगता तो ऐसा विचार करनेसे भी तो आनन्द ही प्राप्त होता है ! ऐसा होते-होते दृढ़ ज्ञान हो जावेगा ! क्योंकि अन्तमें सब की शरण ज्ञान ही है। यदि कोई करोड़पति क्यों न हो जब तक उसका पुण्य उदय है तब तक भले ही मजे करले किन्तु फिरभी उस समय में किये गये बुरे परिणाम आगे गति बिगाड़ देंगे ! मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, धन गृह गोधन प्रभाव, मेरे सुततिय, मैं सबलदीन, बेरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सुभग मूरख प्रवीण ! आदि पर्यायबुद्धिका परिणाम दुःखका ही देने वाला है। मैं तो ज्योतिस्वरूप अमूर्त आत्मा भगवानके समान स्वभाव- वाला हूं ऐसा सोचतेहुए भगवानको नमस्कार करें।

इसके भीतरके मर्मपर दृष्टि रखो तथा बाह्य सब छोड़ो तथा अपनेको पहिचानों ! मुझे अमुक ने गाली दी ऐसा मनमें भाव लाना ही दुखजनक है ! भैय्या ! अपनेसे प्रतिकूल जीवोंपर भी करुणा कर सामान भाव पैदा करो ! सोचो–कि ये जो मेरे प्रतिकूल प्राणी हैं ये अज्ञानी हैं जिन्हें अपनी आत्माके स्वरूपका ही ज्ञान नहीं है वो अपने स्व- भावको जान जावे ऐसी करुणा उनके ऊपर करनी चाहिये। किसी भी जीव से घृणा नहीं करनी चाहिये! जगतमें कोई भी जीव घृणा केपात्र नही हैं।

सब जीवोंका सहज स्वरूप टंकोत्कीर्णवत् स्वतः सिद्ध निश्चल एक ज्ञायक स्वरूप है। द्रव्यदृष्टिसे देखो तो निर्विकल्प अनादि अनन्त अहेतुक चेतन तत्व हैं, गुणदृष्टिसे देखो तो सभी ध्रुवशक्ति- मय हैं। अतः सिद्ध प्रभुमें और समस्त जीवोंमें कोई अन्तर नहीं है। केवल वर्तमान परिणतिकी दृष्टिसे देखनेपर अन्तर दिखता है। सिद्ध प्रभु तो शुद्ध विकासरूप हैं और संसारी जीव अशुद्ध विलासरूप हैं। यह अन्तर चूंकि भोगनेमें तो परिणति ही आती है अतः महान् अन्तर है तो भी यह परिणति जीवके स्वभावकृत नहीं है किन्तु निमित्त- नैमित्तिकभावपद्धतिविहित है अतः मूलमें कुछ भी अन्तर नहीं है।

सिद्ध प्रभुकी तरह शुद्ध केवल ज्ञानमय बननेका क्या उपाय है ? अपने आपको केवल निरखना ज्ञानमय निरखना केवल ज्ञानी बननेका उपाय है। हम अपनेको जिस रूपमें निरखेंगे उस रूपकी प्राप्ति होगी अतः हम अपनेको यथार्थ सहज निजस्वरूप जैसा है वैसा ही चित्स्वभावरूप अपनेको अनुभवें। मैं स्वतः सत् हूं, स्वतः परिणामी हूं, स्वतन्त्र हूं, विज्ञानानन्दघन स्वच्छ अविनाशी हूं इस प्रकार अपना अनु- भव कर। सत्य सुखी होनेका यही एक उपाय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



विश्वतो भिन्न एकोऽपि कर्ता योगोपयोगयः
रागद्वेषविधाताऽऽसम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी ‑वयम् ॥१-३॥

इस जगतके अन्दर अनन्तानन्त जीव हैं, अनन्तानन्तेपुद् गल]हैं, धर्म एक है अधर्म एक है आकाश एक है। असंख्यात काल द्रव्य है किन्तु फिर भी प्रत्येक परमाणु सारे अनन्तानन्त परमाणुओंसे भिन्न हैं। सारे अनन्तानन्त परमाणु भी प्रत्येक परमाणुओंसे भिन्न हैं! एक स्कन्धकी अपेक्षाभी प्रत्येक परमाणु अपने क्षेत्रमें ही परिणमन करता है। कोई भी एक परमाणु अनन्तानन्त परमाणुओंसे भिन्न है। सत्की अपेक्षा धर्म, अधर्म, आकाशकाल भी जुदा जुदा हैं। स्कन्धमें परमाणुओंका परिणामन सामूहिक रूपसे होता है किन्तु फिरभी प्रत्येक परमाणु अपने-अपने क्षेत्रमें ही परिणमन करता है। इसी प्रकार प्रत्येक जीव अनन्तानन्त जीवोंसे जुदा है। यह प्राणी जो मोह मायामें फंसकर रात दिन विचरता रहता है कि यह मेरा है, यह मेरे घरका है यह सब व्यर्थ है क्योंकि अपने स्वभाव से बाहर अपना क्या है।

चैतन्य स्वभावके अतिरिक्त ये वैभव ये पोजीशन ये ठाट-बाट सब व्यर्थ हैं। जिसने अपना स्वभाव समझ लिया उसके लिए ये सब बातें निस्सार लगती हैं। मेरी आत्मा सारे विश्वसे भिन्न है। मैं एक हूं मैं सबसे न्यारा हूं इस प्रकार विचार करना चाहिए। में निजी दो बातोंको छोड़ कर किसीका कुछ नहीं करता (१) योग (२) उपयोग मैं कदाचित् इन दोनोंका ही कर्ता हूं अन्य कुछ नहीं करता हूं मेरी आत्माके प्रदेशोंमं जो हलन चलन होती है उसीका नाम योग हैं और जो गुणों का यूज है प्रवर्तना है उसका नाम उपयोग है। इन दोनों के अतिरिक्त मैं करही क्या सकता हूं। सिद्ध भगवान शुद्ध उपयोगके कर्ता हैं शेष जीव यथा योग्य शुभ अशुभ व शुद्ध उपयोगके कर्ता हैं। ये जगत्के जितने परिणमन होते हैं सब एक दूसरेको यथायोग्य निमित्त र स्वतः होते रहते हैंव। आत्मा पाकतो सआात्रतम चे्ष्टाक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


ही कर्ता है। जैसे रोटी बनायी, अब बताओ आत्माने इसमें क्या आर्थ किया आग जलाई या आटा गूंथा, क्या किया ? अरे भइया ! आत्मा तो अपनी जगह ही स्थिर है। आत्माके प्रदेशोंके योगके निमित्तसे शरीरमें वायुका संचार हुआ जिससे अंगोंमें हलन चलन हुआ और उस प्रसंगमें उपस्थित कोई चीज रोटी बनागयी। मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि या सिद्ध कोई भी अपने आपमें परिश्रम करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं करता है। बाकी अन्य पदार्थोंमें करतब समझना सब मोह मायाका जाल है।

जैसे स्वप्न में हम देखते हैं कि मैं जंगलमें जारहा हूं वहाँ शेर मिलगया उसने मुझे पन्जा मारा खून बहने लगा बेहोश होगया। यह सब उस समय सत्य ही प्रतीत होता है। स्वप्नमें यह अनुभूति नहीं होती कि मैं यह जो सबकुछ देख रहा हूं झूठ है, वास्तविकता इस में कुछ नहीं। किन्तु इसके विपरीत ही प्रतीत होती है। आंख खुलनेपर मालूम होता है कि मैंने जो कुछ देखा है यह सब असत्य है। इसी प्रकार मोहमें भी पड़ा हुआ प्राणी भी इन सब बातोंको सत्य जान रहा है कि यह मेरा है मैं गरीब हूं, यह मेरा घर है। यह मेरा पुत्र है आदि सभी तो एक प्रकार का स्वप्न ही है। रातको जो हम देखते हैं ४-५ घन्टे की नीदमें होता है, यह कुछ उससे लम्बीं निद्रा है किन्तु मेरा स्वभाव तो चैतन्य स्वरूप हैं इसके अतिरिक्त सब झूठ है बकवास है इस प्रकारसे विचार करना चाहिए। जैसे एक शहरमें एक पगड़ी रंगनेवाला रहता था वह आसमानी रंगकी पगढ़ी रंगना बहुत अच्छी प्रकार जानता था। उसके पास कोई पीला रंग दिलानेके लिए अपनी ओढ़नी लाया कोई नीला रंग दिलानेके लिए लाया कोई लाल कोई हरा आदि आदि। उन सबसे वह रंगरेज बोलाकि भइया चाहे किसी भी रंगकी रंगवालो किन्तु सबसे बढ़िया रंगतो आसमानी खिलता है इसी प्रकार यह करो वह करो कुछ भी करो, आत्मीय आनन्द पानेके लिये तो निज सहज स्वरूपकी ही दृष्टि करनी होगी। आनन्द तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



निज दृष्टिसे ही खिलता है। उन सब बातोंको छोड़कर एकही काम करो जो आत्मोद्धारका मार्ग हैं एकही उत्तम बात है वह है स्वानुभूति। इसके अलावा कुछ भी तो हित नहीं है। धर्मके लिए मात्र चैतन्य स्वभाव की अनुभूतिके अतिरिक्त नया काम है कुछभी तो नहीं। यही सर्वदा सोचो कि मैं अपनेमें अपने लिए अपनेको अपनेआप अपने द्वारा सुखी हो सकता हूं। करभी सकता हूं तो मात्र अपनी ही परिणति उसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं करसकता। ये सामायिक करना दर्शन करना आदिके भी उपयोग अपनी आत्मा की ओर अपनेको करनेके लिए ही है। खोटे कार्यमें न लगकर स्वकी अनुभूतिकी ओर झुके अतः सामायिक आदि किया जाता है। मैं तो समस्त द्रव्योंसे भिन्न हूं तथा समस्त द्रव्य मुझसे भिन्न हैं। क्योंकि मैं एक हूं। रागद्वेष ही संसारमें रुलानेवाले हैं। मोहकी भित्तिसे टकराकर यह उपयोग दो रूप में बंट जाता है एक राग की ओर एक द्वेष की ओर जैसे नदी का बहता हुआ पूर पुलके बीच लगे खम्भेसे टक्कर पाकर दो धारा में बहने लगता है उसी प्रकार मोहकी टक्कर पाकर यह उपयोग रागद्वेष इन दो रूपमें प्रवाहित हो रहा हैं। यदि पर पदार्थ एकही हो तबतो कोई गड़बड़ी नहीं होगी किन्तु अनेक पर पदार्थके मिलने पर रागद्वेषके भाव पैदा होते हैं। जहां दो होते हैं वहां द्विविधा होती है। एक पिताके यदि एक लड़का है तबतो कोई बात नहीं होगी किन्तु दो या अधिक होनेसे रागद्वेषकी भावनाएं होती हैं एकसे ✓: एकसे द्वेष अवश्य ही होगा! मैं अज्ञान वश अपने स्वरूपको भूलकर रागद्वेषरूप दो धाराओंमें बह रहा हूं अतः रागद्वेषको छोड़कर मैं स्वयं में सुखी होऊं।

मैं पर पदार्थका उपादानसे कर्ता नहीं हूं। तो क्या निमित्तसे हूं? नहीं, निमित्त से भी कर्ता नहीं हूं। योग उपयोग ही निमित्त रूपसे कर्ता है। ये योग और उपयोगभी क्षणिकही हैं। किन्तु आत्मा क्षणिक नहीं। योग उपयोगकी जो तरंग उठती है वही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कर्ता है। आत्मा तो निमित्तसे भी कर्ता नहीं है। योग उपयोगका कर्ता आत्मा है अर्थात् आत्माकी परिणति है। जो ध्रुव है वह दूसरेकी परिणतिका भी निमित्त कर्ता नहीं होता, कर्ता अध्रुव ही होगा।

प्रत्येक पदार्थ अन्य प्रत्येकसे भिन्न है। मैं भी बाह्य परपदार्थों से दूर हूं। बाह्य पदार्थोंकी दृष्टि करके व्यर्थके विकल्पपरिणमन होते हैं इन सब विकल्पोंको छोड़कर मैं अपनेमें अपने आप अपने आप अपने लिए अपने द्वारा सुखी होऊं। रागद्वेषके कारण उत्पन्न संताप की स्थितिमें भी यदि स्वकी अनुभूति कर लो, सन्ताप दूर हो जावेगा। अपने आपकी अनुभूतिही आनन्ददायक है। अपने आपका दर्शन हो, आत्मामें ही रति हो, आत्मामें ही रुचि हो। इसके अतिरिक्त कोई सहायक नहीं है। यह सब कषाय वालों का मेला है। अतः इन सबसे कोई फायदा नहीं होगा। जिससे, जिसकी कषाय मेल खा गई उससे मित्रता, मेल न खानेपर शत्रुता होती है। अतः सभी स्वार्थी हैं। वैसे ये सब स्वानभूतिके समक्ष व्यर्थ हैं। सर्व पदार्थोंको जिन्हें भी जानो जितना उनका सत्तासिद्ध स्वरूप है उसी रूपमें जानो। आत्मसुख यथार्थ ज्ञानमें मिलेगा, अन्यत्र नहीं मिलेगा।

न करोमि न चाकार्षम् न करिष्यामि किञ्चन।
विकल्पेनेव त्रस्तोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥ १-४॥

किसी भी पदार्थको न मैं कुछ कर सकता हूं, न आज तक कुछ कर सका हूं न आगे करही सकूंगा। सब पदार्थ स्वयं सत्ता वाले हैं। वस्तु सत् तो है किन्तु अन्य सभी रूपसे सत् नहीं होजाता है अन्यथा कुछ भी न रहेगा अतः प्रत्येक वस्तु अपने चतुष्टयसे सत् हैं, परके चतुष्टयसे नहीं। यह वस्तुके वस्तुत्व गुणका प्रताप है। वस्तुमें परिणत होना, स्वभावसे सिद्ध है। वे अपने आप परिणमन करते हैं। वस्तु अपने चतुष्टयमें द्रव्यत्व गुण द्वारा परिणमनशील हैं। वह निरन्तर परिणमन करता रहता है। एक क्षणके लिये भी द्रव्य का परिणमन बन्द नहीं होता, यह द्रव्यत्व गुण का प्रताप है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अस्तित्व गुण यदि यह भाव करे कि मैं सत् हूं ऐसा मुझे आदेश हुआ है और स्वच्छन्द होनेलगे तो इसका मुंह बन्द करनेके लिए वस्तुत्व गुण मौजूद है। उसकी आज्ञा है कि तू अपने चतुष्टयसे ही सत् रह सकता है परके चतुष्टयसे नहीं। इस प्रकार वस्तुत्व गुण ने अस्तित्व गुणकी स्वच्छन्दताको दबोच लिया। अब यदि वस्तुत्व गुण कहे कि मैं सत् रहूं और उत्पाद ब्ययसे भिन्न रहना चाहे तो उसको द्रब्यत्व गुण दबाता है कि तुझें निरन्तर परिणमन करते रहना होगा। यदि द्रब्यत्व गुण कहे कि मैं तो परिणामाऊंगा किसी रूप परिणामाऊ तब द्रब्यत्व गुणको अगुरुलघुत्व गुण दबाता हैं। कि तू अपनेमें परिणमनशील है अत: अपनेमें ही परिणमन कर यह न हों कि स्वच्छन्द हो जावे। यदि तू ज्ञान गुणवाला है तो ज्ञानोदयरूप ही परिणमनकर इत्यादि तथा प्रदेशवत्वगुण आधार बताता है। प्रमेयत्व ब्यवस्था करता है। सभी द्रब्य स्वतंत्र हैं इसप्रकार सबके साधारण छह गुण हैं। अत: किसी का न कुछ करसकता हूं न विगाड़ सकता हूं न बना सकता हूं न मेरा यह स्वभावही है मैं तो चैतन्य स्वरूप हूं। यदि इस प्रकारका भाव क्षण भरको भी दृष्टिमें आजावे तो पर पदार्थका तुरन्त त्याग होजावे। अपनी श्रद्धा ही तो बदलनी है चरित्र तो अपने आप आजावेगा। अत: श्रद्धा को अपने भीतर लानेके लिए इस प्रकारका विचार करना चाहिए।

लोककी देखादेखीपर मुग्ध न होकर अपनी ओर दृष्टि करना चाहिए एक कथा है कि बाप बेटा दोनों चले जारहे थे। बाप घोड़ेपर बैठा था और बेटा पैदल चलरहा था। आगे गांव के आदमी बोले कि यह आदमी कितना बेवकूफ है कितना स्वार्थी खुदगर्ज है कि स्वयं तो घोड़ेपर बैठा है और लड़केको पैदल चला रहा है। बापने कहा कि बेटा तू घोड़ेपर बैठ जा मैं पैदल चलता हूं। दूसरे गांव बाले इस दशामें इन दोनोंको देख कर बोले कि यह लड़का कितना मूर्ख है नालायक है कि स्वयं तो घोड़ेपर बैठा है और बापको पैदल चलारहा है। इस बातको सुनकर उन्होने विचार किया कि दोनों ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



वैठ जावे । और दोनों घोड़ेकी पीठ पर वैठ गये। तीसरे गांवमें पहुंचे तो सब ग्रामवासी वोले कि मालूम पड़ता है यह घोड़ा इन्होंने किसीसे मांगा है इनका स्वयं का नहीं है जो दोनोंके दोनों उसकी पीठपर लदे हुए हैं, मुफ्तका समझ वेचारेपर दयाभाव नहीं रखते। बहुत विचारनेके पश्चात वे दोनों पैदल चलने लगे तथा घोड़ा साथ साथ करलिया। आगे चौथे गांवमें पहुंचनेपर उसके ग्रामवासी बोले कि ये कितने मूर्ख हैं कि स्वयं पैदल चल रहे हैं और घोड़ा ऐसे खाली चल रहा है। इस पर वैठ कर ये जासकते थे। देखो भैया, यहांपर चारही वातें तो हो सकती थीं बाप बेटा उभय अनुभय। जैसे कि दर्शन में (१) सत् (२) असत् (३) उभय (४) अनुभय चार बातें हैं पांचवीं वात तो नही सकती, क्योंकि इतनी तो दोनोंमें ताकत नहीं कि घोड़ेको कन्धे पर लाद कर चलसकतें वे। अतः भइया दूसरोंसे प्रशंसाकी इच्छा रखना भ्रमोहको प्रवृत्त करना है। ये धन रुपया ऐश्वर्य आदि अपने ही परिणमन करते हैं तब इनमें फिर क्यों मोह रखा जावे। हे प्राणियों जैसा वस्तुओं का स्वरूप है वैसा मान तो लो फिर स्वंयं ही सुखी होजावोगे। भैया सच्ची बातको सच माननेमें क्या बुराई है। श्रद्धासे च्युत हुआ प्राणी इस संसाररूपी समुद्रसे पार नहीं हो सकता चरित्रसे च्युत होकर श्रद्धाका आश्रय पाकर फिर भी कभी पार हो सकता है। अतः अपनी श्रद्धा ठीक रखनी चाहिये, रत्नत्रयकी पूणंता क्रमशः होती है। जैसे जीवको सम्यक् दर्शन होता है तो उन्हें तीन ही तैयारियाँ करना होती हैं अधःकरण, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण ये क्रमशः होंगे। चरित्रको विकसित करनेके लिए अणुव्रत महाव्रत धारण करना चाहिये। अपने ज्ञान आदि अपनेको सहायक हैं हमें यदि धर्मसाधनामें कोई सहायक है तो वह भी तभी जबकि हममें कुछ बल है। जैसे किसी रोगीको डाक्टर दवा आदि पिलाकर ठीक करता है, वह तभी तो सम्भव हो जब कि उसमें जीवित रहनेकी शक्ति अवशेष है। अन्यथा दवाईका असर वह कैसे सहन कर पाता ? अपनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



ही श्रद्धा, अपना ही ज्ञान, अपना ही दर्शन, ये ही सर्वस्व सार हैं अन्य कुछ नहीं।

अगर धन आदि छूट जाता है या इसका त्याग हो जाता है तो इसमें हमारा क्या नुकसान है। यदि ये प्राणी मिले हुए ऐश्वर्य धनादिमें अनाशक्तिकी बुद्धि रखकर चलता है तो निश्चित आगे उसे इससे भी तिगुना प्राप्त होजाता है। पूर्व जन्ममें हमने उपेक्षा की होगी तभी तो आज यह ऐश्वर्यादि हमें उपलब्ध हैं। एक नगरमें एक सेठ रहता था। सेठतो ऊपर के कमरेमें रहता था तथा नौकर नीचेके कमरेमें रहता था। एक दिन उसके यहाँ कुछ चोर घुस आये। वह नौकर सर्वदा एक दोहा बोलता रहता था कि—"कौन जावेगा लेने देंगे बुलाकर, होंगे दयालु तो देंगे खुद आकर"॥ तो वह इस प्रकार दोहा बोलरहा था कि चोरोंको देखकर बोला कि यहाँ क्या खोदते हो—अरे उस पेड़के नीचे खोदो जहाँ रुपयोंका हण्डा दबा हुआ है। यहाँ क्या रखा हुआ है।

चोरों ने वैसा ही किया। वास्तवमें वहाँ खोदनेपर उन्हें हण्डा मिलगया उसके ऊपर एक तवा ढका हुआ था, तवेली उन्होंने उठाया तो उसमेंसे ततैय्ये निकल-निकलकर उन्हें काटने लगे उन्होंने सोचा कि इसे जाकर उस नौकरके ही घर पर जहाँ हमने खोदा था उड़ेल देना चाहिये ताकि ये ततैय्ये उसेही काटें। उन्होंने जाकर खोदे हुए कमरेके उस स्थानमें उसे उलटा करके पलट दिया पीछेकी तरफ अशर्फियां भरी हुई थीं। अतः सब अशर्फियां उस गड्ढेमें भर गयीं। नौकर उपरोक्त ही दोहा पढ़रहा था। कि होंगे दयाल तो देंगे बुलाकर, कौन जायगा लेने देंगे खुद आकर। देखो उसने धनके प्रति उपेक्षा भाव रखा तो खुद उसके घरमें धनकी वर्षा हुई। और धनकी लालसा रखे हुए अगले जनममें मुझे धन प्राप्त हो ऐसा सोच कर ऊपरसे ही उपेक्षा दिखाये तो यह भी ठीक नहीं है। वस्तु स्वयं सिद्ध है तथा स्वतः परिणामी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



भी है। हमारा स्वभाव भी परिणामन शील है। तब मैं दूसरोंमें क्या करूं तथा दूसरा मुझमें क्या करे। प्रत्येक परमाणु अपनेमें ही परिणमन करता है। हमेशा सब कुछ करते हुए भी अपने भाव यही रखो कि यह सब असार है, संसार असार है। यथार्थ श्रद्धाका भाव रखना चाहिये। यदि ऐसा न कर सके तो वरबादीके सिवाय कुछ हाथ नहीं लगेगा। बुद्धिमानी इसीमें है कि अपनी श्रद्धा यथार्थ बनाये रहो। सम्यग्दृष्टि चक्रर्वातिकी सम्पदा तथा इन्द्रादिके भोगोंको कौवेकी बीटकी तरह समझते हैं अर्थात् वे विद्यमान वस्तुओंमें उपेक्षाका भाव रखते हैं। मैं पर-पदार्थ का न कुछ कर सकता हूं न कुछ कर सका न करूंगा। केवल विकल्पोंसे कल्पनाओंसे दुखी हो रहा हूं। अतः इन सब विकल्पोंको छोड़ कर मैं अपनेमें अपने लिये अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊं।

स्वरागवेदनाविद्धश्चेष्टे स्वस्यैव शान्तये।
नोपकुर्वे च नो शान्तिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-५॥

मैं अपने अन्तरंगकी वेदनासे बीधा गया अपनी शान्तिके लिए चेष्टा कर रहा हूं, अपने आपकी ही शान्तिके लिए चेष्टा कर रहा हूं। स्वयंकी जो मेरी पीड़ा है उसे सहन न कर पानेके कारण ही शान्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रहा हूं। इससे मैं किसी का उपकार नहीं कर रहा हूं। ग्रन्थकार भी ग्रन्थ लिखनेका यही कारण बताते हैं कि संसारी जीवोंका दुख देख कर मुझे दुःख हुआ। अतः अपनी वेदनाको शान्त करनेके लिये ही मैंने ग्रन्थ लिखा इसमें परोपकार कैसा? मैंने जो कुछ किया वह अपनी शान्तिके लिए ही तो किया। किसी द्रव्यका किसी अन्य द्रव्यमें परिणमन हो ही नहीं सकता फिर किसी भी पदार्थ इष्ट अनिष्टबुद्धि व कर्तृत्व बुद्धि क्यों हो। वीतराग ज्ञान अर्थात् रागद्वेषरहित ज्ञान न होने के कारण क्लेश ही है।

दूसरोंको दुखी देखकर आचार्योंकी अनुकम्पा हुई, अनुकम्पा उसे कहते हैं कि दूसरोंको दुखी देखकर हृदय पसीज जाना। अतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उस अपनी वेदनासे बिधकर ही आचार्यों ने चेष्टा की और ये शास्त्र बन गये। उनकी ये भावना नहीं थी कि मैं उपकार कर सकता हूं या करूंगा। बल्कि इस चेष्टामें उपकार हो गया। अतः इससे आत्मज्ञान तथा आत्मध्यानका मौका मिल गया। छठे गुणस्थानमें ऐसे भाव मिल जाते हैं कि छठे गुणस्थानसे सातवें गुणस्थानमें आ जाता है। अतः वे ऐसे शुभोपयोगका ध्यान किया करते हैं जो ध्यानमें बढ़नेका बाधक न हो। गृह सम्बन्धी वेदनासे रागकी वेदनासे जो चेष्टा की जाती है वह शुद्धोपयोगकी दृष्टिसे हेय है। आत्मध्यान अति दुष्कर है किन्तु स्वाधीन होनेसे अति सरल है।

शुभोपयोगमें रहनेवालोंको लौकिक सुख होता है। किन्तु शुद्धोपयोगियोंको परमात्मीय आनन्द होता है। आत्मानुभवके लिए धर्मकी प्रेरणाके लिए शुभोपयोगियोंका जल्दी मन हो जाता है किन्तु विषय रागमें होने पर इस ओरको ध्यान होना कठिन होता है इस कारण शुभोपयोगका भी उपदेश है। जिन्हें शुद्धोपयोग हुआ उन्हें शुभोपयोगके बाद ही हुआ। वैसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव चौथे गुणस्थानवाला जीव राग, विषयभोग आदिके होते हुएभी उनमें उपेक्षाभाव रखता है। विषयभोगोंमें रहते हुए भी यही सोचते हैं कि कब और कैसे यह छूटें देखो कितना कठिन कार्य है यह कि उनको करता भी है ओर झंझटभी मानता है। कितने ज्ञानबलकी बात है। और मैं केवल रागचेष्टामें लगा हुआ हूं दूसरोंका उपकार क्या कर सकता हूं। ऐसा ज्ञानी जीव सोचते हैं। किसी जीवको दुखी देखकर या भूखा देखकर रोटी दी तो उसमें हमने उसका क्या उपकार किया, भैय्या स्वयंकी शान्तिके लिए, स्वयंकी वेदनासे बिधकर ही तो रोटी दी, तो इसमें उसका उपकार कैसा ? यह तो स्वयंका ही उपकार हुआ। व्यवहारमें अब हम ऐसा कहते हैं कि इसने उसपर दया की अथवा रोटी देकर उसका उपकार किया, किन्तु वास्तवमें देखा जावे तो उसने स्वयं ही रागकी वेदनासे बिधकर चेष्टा की, इसमें उपकार कैसा ? एक जज था। एकदिन वह अपनी कारमें बैठकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अदालतमें जारहा था। रास्तेमें कीचड़में पड़े हुए एक गदहेको तड़फते देखा। कार रुकवायी और स्वयं ही उसको बाहर निकालनेके लिए आगे बढ़े। साथमें जो चपरासी था उसने कहा भी कि आप क्यों निकाल रहे हैं, हम निकाल देते हैं किन्तु उसने कुछ बात न सुनते हुए अपने हाथों ही उस गदहेको बाहर निकाला। कपड़ोंपर भी कीचड़की छींटें लग गयीं। इतना समय नहीं था कि जाकर कपड़ा बदल आवें, अतः उसी पोशाकमें अदालत पहुंच गये। जब उनको सबने इस दशामें देखा तो सब आश्चर्यचकित रह गये कि आज क्या बात है जो जज साहबकी ऐसी दशा है। आजतक तो कभी भी बिना इस्त्रीके कपड़े नहीं देखे न ही गन्दे। फिर आज क्या बात हुई ? जिनकी उनसे वार्ता-लाप होती थी उन्होंने पूछा कि जजसाहब क्या बात है जो आज ऐसी दशा बना रखी है। वह साथवाले नौकर ने सम्पूर्ण घटना सुनाते हुए बताया कि साहब बड़े दयालु हैं। रास्तेमें गधा फंसा था। मैं उठाने को तैयार था, किन्तु इन्होंने कुछ न सुनकर अपने हाथों ही उस गदहे पर दया की। तो जजसाहब बोले—नहीं भैय्या-मैंने जो कुछ भी किया अपने लिए ही किया, अपना ही उपकार किया, गदहेका नहीं।

सोचो-यदि मैं ऐसा न करता तो यहां आकर जबभी बीच बीचमें उसके तड़फने का वह दृश्य याद आता तब मैं उसी समय वेदनासे बिध जाता। अतः मैंने अपनी वेदनासे बिधकर ही उसको बाहर किया। झगड़ा आदि होनेपर व्यवहारमें ऐसा कहते हैं कि देखो भाई। इसके ऊपर मैंने कितना उपकार किया व्यापारके लिए रुपया दिया सब सुविधाएं दीं किन्तु आज है कि मेरी बात ही नहीं सुनता मुझे कुछ समझता ही नहीं है। ऐसी पीड़ा अज्ञानमें भ्रमसे कर्तृत्वबुद्धिसे हुई। सोचकर तो देखो खुदही तो तेरे अन्दर राग उत्पन्नहो रहा था जिससे तूने चेष्टा की, उपकार क्या किया। वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है कि खुद ही में खुदका परिणमन हुआ करता है। एक किसान था व उसकी पत्नी। पत्नी चतुर थी। जरा अशिक्षित छोटे पुरुषों की ऐसी भावना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



रहती है कि जब तक औरतको पीटा न जाय तब तक उनपर रुआब नहीं गालिब होता। अतः किसान अपनी औरतको पीटनेके लिए तरीके सोचता रहता था किन्तु वह इतनी चतुर थी कि कभी अवसर ही नहीं देती थी। अतः एक दिन किसानने खेतमें जाकर एक बैलको उत्तरकी दिशामें मुंह करके खड़ाकर दिया दूसरेको दक्षिणकी दिशामें। फिर उनके कन्धोंपर जुआ रखकर हल फसाकर खड़ा हो सोचने लगा कि आज जबभी वह रोटी देने आवेगी तो अवश्य ही ऐसी कोई न कोई उल्टी बात कहेगी जिससेकि मैं उसकी पिटाई कर सकूंगा। निश्चित समयपर वह आयी तथा दूरसे ही यह दशा देखकर सोचने लगी कि आज यह क्या बात है। वैसे मेरे पतिका दिमाग भी ख़राब नहीं, कोई ऐसी बात ही नहीं है जिससे ये ऐसा करें। कोई न कोई बात अवश्य है अतः वह मनको समझाती हुई किसानको रोटी देती हुई बोली कि चाहे उल्टा जोतो चाहे सीधा जोतो अपना काम तो रोटी दे जानेका है अतः लो ये रोटियाँ। और इतना कहकर रोटी देकर चली गयी पीछेको मुड़ कर भी नहीं देखा, न रुकी ही। सो भैया ! निश्चयनयकी दृष्टि लगाकर सोचें तो पता लगेगा कि यह पदार्थ इतना ही है। तथा इसका परिणमन इतनेमें ही है। इस किसी भी पदार्थसे मेरा भला बुरा नहीं इस प्रकार विचार करनेसे दुख स्वयं ही समाप्त हो जावेंगे। प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है व स्वयं में स्वयंके लिए ही परिणमन करता है।

स्वतन्त्रता का लक्षण है—सद्भाव या अभावरूप निमित्त पाकर स्वयं का स्वयंमें ही परिणमन। इतना ज्ञान यदि आ जावे तो हमभी भगवान के परिवारमें शामिल हो गये। उनकी ज्ञानगोष्ठीके सहवासी हो गये। और यदि हममें वस्तु स्वातन्त्र्यकी दृष्टि नहीं जगी तो हम उनसे दूर हैं, उनके आनन्दसे परे हैं। तथा स्वयंसे भी दूर हैं। अपने आपके स्वभाव की उपासना करनी चाहिये। परन्तु ऐसी दृष्टि प्रायः किसीकी नहीं होती। ज्ञान खुद ज्ञानके स्वतः सिद्ध स्वरूपको जानने लगे तिस दृष्टिसे, विरले ज्ञानीं जीव ही ऐसी दृष्टि करते हैं। यहांपर भी मोही-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मोहकी ही बात चिल्लाते हैं किन्तु ज्ञानी जीव किसीकी बात नहीं सुनते जो विवेकशील मनमें आता है वही करते हैं। उद्धारकी भावना करनेवाला बहुतोंकी प्रशंसा न चाह कर दो चार ज्ञानी पुरुषोंकी प्रशंसाकी आकांक्षा रखता है तो मूल्य है अन्यथा मूर्खों द्वारा प्रशंसा होनेसे क्या लाभ ? और यदि ऐसा विचार करें कि अज्ञानी जीव प्रशंसा करें तो क्या लाभ ? और ज्ञानी जीव प्रशंसा करें तो क्या लाभ तो बहुत ही उत्तम है। इस प्रकार विचार कर अपना कल्याण करें। क्योंकि करता कोई किसी का कुछ नहीं। मैं भी अपनी रागकी वेदनासे विधकर अपना ही कषाय पूर्तिका कार्य रूप उपकार कर रहा हूं। अतः मैं वस्तु के स्वरूपको ध्यानमें रखकर अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं। मैं यहाँ जो कुछ कर रहा हूं वह अपनी रागवेदनासे पीड़ित होकर अपनी शान्तिके लिये अपनी चेष्टा कर रहा हूं मैं परका न उपकार करता हूं और न अन्य किसी प्रकारका परिणमन कराता हूं। भ्रम पूर्ण परकर्तृत्वकी दृष्टिमें अशान्ति ही बसती है। मैं जैसा सहज स्वरूपमय हूं वैसा ही माननेमें मेरी शान्ति है। यही विचार जीवों को सदा करना चाहिये।

यातिनेतो न चायति जातुचित्किञ्चिदन्यतः।
खिन्नो हीनाधिकंमन्यः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-६॥

यह आत्मा स्वतः सिद्ध है, यह आप अपनेमें परिपूर्ण है। जो भी पदार्थ है वह अपनेमें पूर्ण ही होता है अधूरा नहीं। मैं भी अपनेमें परिपूर्ण हूं। भले ही अशुद्ध योग्यतामें बाह्य पदार्थका परिणमन पाकर उल्टा परिणमन हो किन्तु अधूरापन नहीं है। यह अधूरापन मोहमें होता है। यह हमारी इच्छाके अनुकूल कल्पना है नहीं तो प्रत्येक पदार्थ पूर्ण है। और परिणमन भी पूर्ण है। असीम विकास होनेको पूर्ण कहते हैं। अधूरापन उसे कहते हैं कि ज्ञानमें शक्ति तो अनन्त लोक व अनन्त आकाशको जाननेकी है किन्तु ज्ञानावरणके उदयके निमित्त पाकर आधा चौथा अंश अंशरूप जान रहा है। किन्तु प्रत्येक समय परिणमन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



पूर्ण ही है। पर्यायभी पूर्ण है। रागादिका परिणमनभी पूर्ण ही है। अतः जितने भी आत्मा हैं वे सब अपनेमें पूर्णही हैं। किसीने बनाया नहीं जो आधा बना और आधा न बना ! अतः मेरा कुछ भी गुण व पर्याय बाहर नहीं जाती तथा न बाहरसे ही कुछ मुझमें आता है। पति-पत्नी का आपसमें जो प्रेम है तो क्या उनके गुण एकमय एक हो जाते हैं, नहीं बल्कि पत्नीकी आत्मा उसकी आत्मामें पूर्ण है और पतिकी आत्मा पतिकी आत्मामें पूर्ण है ! पिता अपनेमें पूर्ण है और पुत्र अपनेमें पूर्ण ! किसीका भी तत्त्व अन्यमें नहीं जाता। किन्तु व्यर्थ ही यह प्राणी मोहके कारण नाना कल्पना करके नाना प्रकारसे क्लेश पाता है। संसारी प्राणियोंमें रागद्वेषके वश होकर छंटनी करता है कि यह यह मोही प्राणी मेरा है यह पराया है आदि आदि। परिणाममें होता क्या है कि वह दुःख ही भोगता रहता है। यदि व्यवहारमें ही ऐसा माने कि यह मेरा है वह अमुकका है आदि तो भी कोई बात नहीं। किन्तु यह तो अन्तरंगसे ऐसा मानता है, अपने ऊपर अन्याय करता हैं। ये सबतो मोहके उबाल हैं अन्य कुछ नहीं, न सत्यही हैं। दूसरेकी आत्मामें और मुझमें कोई सम्बन्ध नहीं है, आत्माके गुण और पर्याय दूसरेमें नही जाते व नहीं दूसरेके मुझमें आते। जो अपने आपको मानता है कि मैं बड़ा आदमी बन गया हूं या गरीब हो गया हूं, कमजोर हो गया हूं ! यह सब मोहके कारण ही है। ज्ञान आदि निज वैभव तो स्वरसतः बढ़ेगा ही घटेगा नहीं। व्यर्थमें खेदखिन्न होता है। यहाँ तो ये सारे पदार्थ स्वयं परिणमनशील हैं, स्वतन्त्र हैं। इनमें कोई किसी अन्यको किसी अन्यका कर्ता माने, स्वामी माने तो यह मोहजाल का ही प्रभाव है। इस जालमें उलझ कर आनन्दमें कोई नहीं रह सकता। हम जब दुःखी होते हैं तब अपने ही मिथ्या विकल्पोंके कारण दुःखी होते हैं अन्य कोई मुझे दुखी नहीं करता। वे विकल्प भी बाहर कुछ काम नहीं करते, वे तो होकर मिट जाते हैं, किन्तु टेव यह पड़ गई कि प्रत्येक आकुलतामें यह दृष्टि रहती है कि अमुक पदार्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



यदि यों नहीं परिणमता तो मैं दुखी न होता। परसे अपना परिणमन मानना मिथ्यात्व है। एक कहावत है कि—

अन्धेर नगरी बेबूझ राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा !!

एक थी अन्धेर नगरी। एक गुरु शिष्य उस नगरीमें पहुंचे। शिष्य भोजनका प्रबन्ध करनेके लिए कोयला लेने गया। बाजार जाकर पूछा कि भैय्या यह कोयला क्या भाव है ? उत्तर मिला टके सेर ! फिर उसने पूछा लकड़ी क्या भाव ? उत्तर मिला टके सेर ! फिर पूछा यह रसगुल्ला क्या भाव है ? उत्तर मिला टके सेर ! फिर पूछा कि यह खाजा क्या भाव ? उत्तर मिला टके सेर ! अर्थात् सब चीजें टके सेर हैं। शिष्यने सोचा कि व्यर्थ ही क्यों कोयला खरीदकर प्रपञ्चमें फंसा जाये, मजेसे रसगुल्ले खाये जावें। भावतो एक ही है। अतः बोला कि एक टकेके रसगुल्ले देदो। रसगुल्ले लेकर घर आया और गुरुजी से कहाकि गुरुजी ! अब यहीं पर कमसे कम ६ महीना ठहरेंगे। यहां तो बहुत आनन्द है। गुरुने समझाया कि नहीं भाई ऐसी नगरीमें नहीं रहना चाहिये अवश्य ही यहाँ पर विपदा उठानी पड़ेगी। किन्तु शिष्य न माना और किसी प्रकार गुरूजी को छह महीने के लिए मना लिया। शिष्य मजेसे खा खाकर मोटा होने लगा। तब साढ़े पांच माह बाद एक घटना घटी कि एक बाबू साहब सड़कके किनारेसे जा रहे थे आगे एक मकानका कोना टूटा पड़ा था। उसने जाकर राजाको बताया कि यदि उस समय मैं उसके नीचेको जा रहा होता और मकानमेरे ऊपर गिर जाता तो क्या होता अतः इसका न्याय किया जावे। भैया, इस कथानकमें परखते जानाकि सभीकी कैसी वाह्य दृष्टि है। राजाने मकान मालिकको बुलवाया। मकान मालिक बनिया था उसने आकर बताया कि महाराज मेरा कसूर नहीं है यदि कारीगर ठीक प्रकार बनातातो यह क्यों गिरता। मैंने दाम पूरे दिये। राजाने कारीगर को बुलवाया व पूछा। कारीगर बोला-महाराज यह कसूर मेरा नहीं है आप नापकर देख लीजिये मकान उतना ही लम्बा उतना ही चौड़ा उतना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



ही ऊंचा सूतके नापसे बना है यह तो गारा करनेवालेका कसूर है। न गारा गीला होता न यह गिरता। फिर गारा गीला करनेवालेको बुलाया गया। उसने कहा–महाराज मेरा कोई कसूर नहीं, मशक वाले ने जितना पानी गिराया उतना मैंने गीला कर दिया। अतः मशक वालेको बुलाया गया और पूछा कि तुमने इतनी बड़ी मशक क्यों बनवायी। तो उसने कहा महाराज ! बड़ा जानवर आया और बड़ी मशक बन गयी, न बड़ा जानवर आता और न यह बड़ी मशक बनती। राजाने जानवर बेचनेवालेको बुलाया व पूछा कि तूने इतना बड़ा जानवर क्यों बेंचा जिसकी इतनी बड़ी मशक बने जिससे गारा गीला हो जाय और मकान कच्चा बने व गिर जाय। यदि ये बाबू उसके नीचे होकर गये होते तो इनपर गिर जाता ना। इसका उत्तर वह निरपराध बेचारा क्या दे।

राजाने उसे फाँसीकी आज्ञा सुना दी। जल्लाद जब उसे फांसीके लिए ले गये तो वह रस्सी उसके गलेमें ठीक नहीं फंसी क्योंकि उसका गला पतला था। जल्लादने राजाको बताया कि इसका गला पतला है और रस्सीका फन्दा चौड़ा है। तब राजाने आज्ञा सुनायी कि अबे देर क्या करता है, इसके गलेमें नहीं बैठता तो किसी मोटे गलेवालेको ढूंढ़कर लावो जिसको यह फन्दा फिट आ जावे। जल्दादोंको बहुत ढूंढ़नेपर वही शिष्य मिला उसे जब वे लाने लगे तो वह बोला। भैय्या मैं अपने गुरुजी से मिल लूं फिर चला चलूंगा। गुरुजी के पास जाकर सब दशा बतायी। गुरुजी बोले कि हमने तुम्हें पहिले ही कहा था कि कोई न कोई संकट अवश्य आवेगा किन्तु तुम माने नहीं। अच्छा तुम चलो और जब फाँसी लगने लगे, मैं कहूंगा कि फांसी मुझे दो और तुम कहना कि नहीं फाँसी मुझे दो। इस प्रकार झगड़ना, आगे मैं सम्हाल लूंगा। फांसीके समय गुरुजी बोले कि यह फांसी मुझे दी जावे, शिष्य बोला कि नहीं मुझे होनी चाहिये। इस प्रकार आपसमें झगड़ते देख राजा बोला कि यह सब क्या बात है। गुरूजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



बोलेकि–आप चुप चाप बैठे रहिये, आपको क्या पता यह मुहुर्त कैसा है। यदि इस मुहूर्तपर फांसीपर चढ़ा जावे तो सीधे स्वर्ग मिलेगा। राजा बोला तब आप लोग रहने दीजिये मैं ही फांसीपर चढ़ूंगा और राजा ही फांसींपर चढ़ गया। भैय्या यह सारा संसार अन्धेर नगरी है। यहाँ जो मोहमें गुजरना है यही हुई अन्धेर नगरी तथा ये सब करते हुए भी अपना कसूर नहीं मानते है, यह है अन्धेर। प्रत्येक कसूर पर कहता है कि यदि ऐसा न होता तो ऐसा होता किन्तु वास्तवमें नहीं देखता कि यह सब मेराही कसूर है। यह है आजका नाच। जितना भी दुख होता है सब तेरे ही कसूर से होता है। यह प्राणी वस्तुत्वको नहीं पहिचानता कि न बाहरसे कुछ मुझमें आता है न मुझसे बाहर ही कुछ जाता है। अतः वे क्लेश करते हैं और दुखी होते हैं।

जैसे कहते हैं कि "मन चंगा तो कठौती में गंगा"। यहां जो हो रहा है उसे होने दो उससे मेरा क्या इस प्रकार सोचनेसे मन चंगा हो जाता है। सब जीव अपने आप अपना ही परिणमन कर रहे हैं। एक चमार था वह कठौतीमें पानी भर कर रखा करता था जूता आदि गीला करनेके लिए। ब्राह्मण-लोग गंगा नहाने जा रहे थे तो वह चमार बोला कि भय्या कि मेरे भी दो पैसे लेते जावो और फूल खरीद कर चढ़ा देना किन्तु चढ़ाना उसी समय जब गंगा हाथ निकाले अर्थात् मांगे ब्राह्मण चल दिया और मनमें बोला कि यह भी कितना मूर्ख है अरे कहीं गंगाका हाथ भी निकलता है। जाकर उसने दो पैसेका सत्तू लेकर खा लिया। वापिस आनेपर चमार बोला भय्या मेरे दो पैसे भी चढ़ा आये। ब्राह्मण बोला हाँ चढ़ा आया। फिर चमारने पूछा कि गंगा मैयाने हाथ निकाला था। ब्राह्मणने कहा अरे कहीं गंगा भी हाथ निकालती हैं हमने तुम्हारे दो पैसेका बहुत अच्छा उपयोग किया है, सत्तू लेकर खा लिया है। चमारने कहा कि हम तो फूल तबही चढ़ाते हैं जब गंगा मैया हाथ निकालती हैं। ब्राह्मण बोला यह कैसे हो सकता है तब उसने वहीं पर स्तुति की। उसी कठौतीसे हाथ निकाला और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उसने पुष्प चढ़ा दिये। उसीको कहते हैं मन चंगा तो कठौती में गंगा फिर क्या आवश्यकता है बनारस, मथुरा आदि जानेकी।

सच बात तो यह है भैया, कि भाररहित न होने तक वह श्रद्धा नहीं होती सदा विचारे कि मैं तो ऐसा वस्तुत्व हूं जिसका आकार नहीं, नाम नहीं, इतने मात्र ही हूं इससे अधिक नहीं इस प्रकार कभी तो विचार करना चाहिये। अपनेको निरखे। ऐसी श्रद्धा हो जाने पर फिर क्या विपदा है। फिर उसे संकट ही क्या है। जिस प्रकार औषधिसे सब संकट दूर होते हैं उसी प्रकार उक्त तत्व विचारनेसे सब विपदाएं नष्ट हो जाती हैं। ये प्राणी विषापहारमणि आदि प्राण रक्षाके साधनोंको तो ढूंढ़ते हैं किन्तु हे प्रभु! तेरा स्मरण नहीं करते। हे प्रभु तेरा स्मरण करनेसे ऐसे-ऐसे चमत्कार होते हैं कि लोग देख कर आश्चर्य-चकित हो जाते हैं किन्तु स्मरण ही नहीं करते। वह परमात्मा अपने में ही तो है, किन्तु यह मोही प्राणी व्यर्थ में ही अपने को छोटा बड़ा समझकर प्रभुदर्शनसे वञ्चित रहता है।

हे प्राणी अपने वस्तुस्वरूपको सम्हाल। तेरे सब संकट दूर हो जावेंगे। मोहकी बात रागद्वेषके संकटको मेटनेका उपाय नहीं, अपितु ॰ ट बढ़ानेका है। अपनी सर्व परिणतियोंसे उपेक्षा करके सदा मैं अपने स्वरूपको अपने लक्ष्यमें लेकर अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं। यह प्राणी दूसरोंको देखता है कि अमुक बहुत स्वार्थी हैं। उससे अपनेको क्या, तात्पर्य-वह अपना परिणमन अपनेमें ही करेगा। खुद खुदका ही काम करता है कोई किसी का कुछ नहीं करता। ऐसी दृष्टि रहनेपर ही भला है। ऐसी दृष्टि कभी सत्संगमें और कभी एकान्तमें व जब चाहे करना चाहिये। जब संहनन अच्छे होते थे उस समय समस्याएं इतनी जटिल न थीं आजके समयमें बहुत कठिन है। एकान्त में बलिष्ठ आत्मा ही रह सकता है। दश आदमियोंके बीच बैठकर भी आत्माकी ओर ध्यान जावे, ऐसा वस्तुस्वरूप अपनी दृष्टिमें रहे तो कोई संकट नहीं। वह वहां हो रहा है लोग क्या कहेंगे—यह सब पर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



दृष्टि है। वस्तुस्वरूपपर दृष्टि लगनेपर कोई संकट नहीं। परकी दृष्टि ही संकट देनेवाली है। अतः मैं परकी दृष्टि हटाकर स्वयंमें स्वयंके लिए स्वयंको स्वयं सुखी रखूं।

देखो, वस्तु जितनी होतीं हैं वे सब शक्तिपिण्ड ही तो हैं। आत्मा भी वस्तु है वह भी अनन्त शक्तियोंका पिण्ड है। उन अनन्त शक्तियोंमें आनन्द शक्ति भी एक प्रधान शक्ति है। इस आनन्द शक्तिका प्रति समय परिणमन होता है, विकृत हो या अविकृत, यह उपादान निमित्तके प्रसंगवाली बात है। किन्तु सर्वत्र वह आनन्द मिला स्वयंके आत्मामें ही। सुख यहीं इसी निज आत्मामें है, अन्यत्र सुख ढूढ़ना ही दुःख पैदा कर लेना है। अतः बाह्यकी उलझन छोड़ कर मैं अपने आपमें ही विश्राम पाऊं। अब आगे कहते हैं कि वस्तुका स्वरूप स्वतन्त्रता ही है तब किसीको कौन क्या करेगा।

स्वातन्त्र्यं वस्तुनो रूपं तत्र कः किं करिष्यति।
हानिर्मे हि विकल्पेषु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥ १-७ ॥

वस्तुका जो स्वरूप है वह स्वतन्त्र है। स्वका मतलब हुआ अपना। जैसे हिन्दीमें कहते है कि तुम्हारा अपना, उसने अपना काम किया। उसी प्रकार सब स्वके अर्थात् अपने तन्त्र हैं। प्रत्येक वस्तु अपने आधीन है क्योंकि द्रव्य गुण पर्याय में रहती है वस्तु तो। अन्य कोई क्या कर देगा कुछ भी तो नहीं कर सकता। जो वस्तु स्वतः सिद्ध है उसका वर्णन करना कठिन है! चीज है तो उसमें परिणति होती रहती है। वस्तु-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावात्मक होती है। द्रव्य गुण पर्यायका पिण्ड है। व्यवहारमें तो पुद्गलको उठाकर दिखा देते हैं कि यह द्रव्य है। अन्य द्रव्योंको जाननेका उपाय ऊपरी नहीं है इस प्रकार एक पिण्ड रूपसे जो जो वर्णन किया जाता है उसमें जो बताया गया यह हुआ पिण्ड वस्तु, प्रदेशोंकी अपेक्षा जो वर्णन होवे वह होगी क्षेत्र वस्तु। पर्यायोंकी अपेक्षा जो वर्णन है वह काल वस्तु कहलाता है। शक्तियोंकी अपेक्षा बताना भाव वस्तु है। जैसे एक आदमीका वर्णन करना है कि वह कैसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



है। यह एक, अमुक गांवका मुखिया है यह हुई पिण्डरूप दृष्टि। लम्बा है ५ फुट और पतला है इस प्रकारकी दृष्टि हुई क्षेत्रकी दृष्टि। अमुक रंगका है यह हुआ व्यञ्जन पर्यायोंको लेकर। घमण्डी है या क्रोधी है अथवा शान्त परिणामी है यह हुआ गुणपर्यायों को लेकर काल अपेक्षासे वर्णन ! उसकी शक्तिका गुणका वर्णन भावदृष्टिकी अपेक्षा है। जैसे पुस्तक हाथमें लेकर कहा कि यह पुस्तक है तो यह बताना हुई द्रव्य दृष्टि ! यह इतनी लम्बी इतनी चौड़ी है यह हुआ क्षेत्रकी अपेक्षा ! यह पुस्तक पुरानी है या अमुक रंगकी है ऐसा वर्णन काल दृष्टिकी अपेक्षा हुआ। इसमें अमुक तत्त्व लिखा है इस प्रकार गुणोंका वर्णन भाव दृष्टिकी अपेक्षा से है। इसी चतुष्टयके कारण इनके चार नाम भी पड़ गये। द्रव्यकी अपेक्षा नाम है पदार्थ, क्षेत्रकी अपेक्षा नाम है अस्तिकाय कालकी अपेक्षा नाम है द्रव्य और भावकी अपेक्षा नाम है तत्त्व। सो प्रत्येक पदार्थ इनसे सहित हैं। जैसे काल द्रव्यमें घटाना है—यह द्रव्य तो है ही, प्रदेश एक ही सही उसकी अपेक्षा क्षेत्र हुआ, काल दृष्टिसे काल भी है। कालमें रहने वाले जो गुण वह भाव दृष्टि हुई।

आत्मामें घटा लो आत्मगुणपर्यायोंका पिण्ड हुआ आत्मा पदार्थ, निज असंख्यात प्रदेशोंमें विस्तृत आत्मा हुआ आत्मा अस्तिकाय, आत्मा की पर्यायोंसे परिणत हुआ यह आत्म द्रव्य और आत्मगुणोंमें तन्मय स्वभाव मात्र हुआ यह आत्मतत्त्व। देखो-अपना चतुष्टय ही अपनेमें है। परके चतुष्टयका अंश भी अपनेमें नहीं है अतः इससे यही सिद्ध हुआ कि प्रत्येक पदार्थ अपना स्वामी है। अपनेमें ही रहता है अपनेमें ही परिणमन करता है तब कोई अन्यमें क्या कर देगा। कई प्राणी ऐसे हैं जो तत्त्वको जानते नहीं और कई ऐसे हैं जो जानकर भी उसमें नहीं रमते, केवल ज्ञात करते रहते हैं। कल्याणकी जो बात है उसके किये बिना तो गुजारा नहीं होगा यह निश्चित है। बड़े दुःखकी बात है कि यह प्राणी मोह आदिमें पड़ा भी है और दुःख भी मानता जाता है। जिस प्रकार मिरंच खाता भी जाता मना भी करता है मिरच्च मत डाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



करो और सी-सी भी करता जाता है आनन्द भी लेता जाता है। इसी प्रकार बाह्य पदार्थोंमें राग भी कर रहे हैं दुःख भी मान रहे हैं। अतः जो करनेमें आ रहा है आ पड़ा है, आत्रे, उसके विना भी तो अभी गुजारा नहीं है। किन्तु साथ ही साथ यह अन्तरंगमें अवश्य बात उठनी चाहिये कि मैं तो मात्र अमूर्त चैतन्यशक्तिस्वरूप हूं यह तो स्वयंमें स्वयं ध्रुव है। श्रद्धा ही काम बनाती है। बात यही ठीक हैं। प्रतिमा भी ले लो सब कुछ कर लो किन्तु बिना श्रद्धाके न मर्मका स्पर्श होगा, न ज्ञान ही होगा। बहुतसे विवेकी जन गृहस्थीमें रहकर भी यही सोचते हैं कि कैसे मैं इन उपयोगोंको छोड़ूं। ज्ञानी यही सोचता है मुझसे यह सब कैसे छूटे! और बहुतसे प्राणी घरसे बाहर रहकर भी घरकी दृष्टि करते हैं पत्नीकी वांछा रखते हैं। सो यह तथा घरमें रहकर बाहरकी इच्छा रखना यह सब अर्धविवेकसे होता है। अर्धविवेक उसे कहते हैं कि ज्ञान तो है, पर दृढ़ता नहीं हुई। छोड़नेपर ग्रहण करनेकी इच्छा, ग्रहण करनेपर छोड़नेकी इच्छा! जैसे किसीको कहो कि—भैय्या-रात्रिके भोजनका त्याग कर दो-तो वह उत्तर देता है कि छोड़नेसे खानेको जी करता है वैसे रात्रिको खाना नहीं खाये ५ महीने व्यतीत हो गये। अतः योगमें वियोगकी बुद्धि तथा वियोगमें संयोगकी बुद्धि, यही अर्द्धविवेकमें होता रहता हैं।

प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें है तब अन्यमें कोई क्या कर देगा कुछ भी तो नहीं, किन्तु विकल्पोंमें हानि होती है। यही विचार करना चाहिये त्यागियोंको भी कि हे आत्मन् जिसका त्याग कर दिया हैं उसके विपरीत तो होगा नहीं अतः वह शक्ति मुझे दो, जिससे मैं अपने आपकी ओर झुका रह सकूं। अन्यथा मन कमजोर होनेसे मैं भ्रष्ट हो जाऊंगा। फिर उठनेका प्रायः कोई अवसर नहीं रहेगा। अतः इन थोथी कल्पनाओंका त्याग कर दूं।

मैं अन्य पदार्थमें कुछ नहीं करता। मात्र विकल्प ही है सो उन विकल्पोंमें अपनी ही हानि है लाभ कुछ नहीं है। जो विकल्प करनेवाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



है उसे कर्ता कहा गया है ? वैसे तो मिथ्या दृष्टि भी कर्ता नहीं है। कोई वस्तु पर पदार्थका कर्ता नहीं है। प्रत्येक वस्तु अपने परिणमनका ही कर्ता है, सो यह विकल्प करनेवाला ही कर्ता है। तथा जो विकल्प है वह कर्म है। अत: विकल्पवालेके कर्ता कर्मपना कभी नष्ट नहीं होता। वस्तुका स्वरूप स्वतन्त्रता है तब अन्य पदार्थ अन्यमें क्या कर देगा। अत: विकल्प करना व्यर्थ है। ज्ञान ही निजस्वरूपमें ले जाने वाला है अपने स्वरूप तक पहुंचनेमें ये व्यवहारसे उपाय बताये हैं कि—अग्नि, जल, तत्त्व रूपवती आदि धारणाएं। सर्व प्रथम उपाय और है वह यह कि शरीरको स्थिर आसनसे बिठाना सबसे पहिले आवश्यक है। मेरुदण्ड को, कमरके बीचकी सीधी हड्डीको मेरुदण्ड कहते हैं, सीधा कर बैठनेसे मन एकाग्र होता है। पद्मासनमें बैठे इससे स्थिरता आती है, फिर श्वास देखता हुआ लेवे श्वास देखता हुआ छोड़े। हमने कब श्वास छोड़ी और कब ली यह दिखता तो नहीं किन्तु पता तो लग ही जाता है कि अब हमने श्वास ली और अब छोड़ी। पहिले अपने मनको एकाग्र रखनेके लिए यह करना फिर इसके पश्चात् भीतरको श्वास लेते समय अन्तरंगमें 'सो' सोचे और श्वास छोड़ते समय अन्तरंगमें ही अहंकी कल्पना करें। प्रकृतिसे श्वास छोड़ते व लेते समय भी तो ऐसी याने "सोहं सोहं" शब्द होता है अत: वैसा ही शब्दोंका जुटाव फिट बैठता है। सो-का तात्पर्य है भगवान और अहम्का तात्पर्य है भगवान जो भगवान है वह मैं हूं। यह श्वासके आश्रयसे ही प्रतिध्वनित होता है। करनेसे स्वयं पता लग जावेगा। फिर 'सो' को लुप्त कर देवे केवल अहम् रह जावे ऐसा करनेसे श्वासकी वह कल्पना छूट जावेगी। श्वासका आश्रय छोड़ अपने को देखा तो अहम्की बात आयी। अहम्का बोध होते समय भी अहम्की कल्पना मिट कर आनन्दकी अनुभूति होती है।

इस प्रकार आत्माका ध्यान करनेका एक यह भी साधन है। मेरी केवल विकल्पोंमें हानि हो रही है, करना धरना कुछ नहीं। कोई-कोई ऐसे प्राणी होते हैं जिन्हें दूसरोंका सम्बन्ध करानेमें ही मन लगता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उन्हें लेना देना कुछ नहीं किन्तु फिर भी प्रकृति बन गयी है कि दूसरे दूसरोंका विवाह सम्बन्ध कराते रहते हैं। केवल विकल्प करता रहता है। कहा है कि "हानिमें हि विकल्पेषु"। अर्थात् विकल्पोंमें हानि ही हानि है। लाभ तो इस आत्माका कुछ भी नहीं है। जैसे किसीने एक स्वप्न देखा कि एक सेठने मेरेको ५० गायें इनाम में दी हैं। एकने उनसे गायकी कीमत पूछी तो बतायी कि एक गायका मूल्य १००) है। ग्राहकने कहा कम ले लो ६०) ले लो। वह ८०) तक आ गया। ग्राहक ७०) में मांग रहा था। ग्राहक भी जोरसे बोला और वह भी। परिणाम यह हुआ कि इस स्वप्नको देखनेवालेकी आँख खुल गयी। आँख खुल जाने पर देखा कि यहाँ तो कुछ नही है।

उसे बहुत पश्चाताप हुआ। और फिर उसी प्रकार आँखें बन्द करके बोला कि "भैय्या ७० रु० में ही ले जावो"। लेकिन वहाँ कहाँ कुछ भी था क्या। केवल विकल्प ही तो है। अपने कुटुम्बमें ही देखो कि कुटुम्बके लिए सब कुछ किया किन्तु मिलता क्या है कुछ भी तो नहीं। सब कुछ होनेके बावजूद भी आत्माको तो कुछ नहीं मिल सकता। मृत्यु हो जावेगी फिर साथ क्या जावेगा इनमेंसे। देखो! पुत्र अपने पिताका पितृतर्पण करता है तो क्या वहाँ पर एक भी जलकी बूंद पहुंच जाती है। केवल विकल्पोंमें सारा लोक भरम रहा है। समस्त क्लेशोंका मूल मात्र विकल्प है। ये विकल्प छूटकर यदि आत्माकी ओर ध्यान जमे तो वही कल्याणकारी है। विकल्पोंमें तो हानि ही हानि है, अतः जिससे मैं विकल्पों को त्यागकर अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं ऐसा ही संकल्प, उपयोग व प्रयत्न करना उत्तम है। विकल्प पारमार्थिक चीज नहीं, कर्मोदयका निमित्त पाकर व किसी पर वस्तुको उपयोगका ज्ञेयरूप निमित्त बनाकर उठाया गया आत्माका एक विभाव परिणमन है। इसके संकटसे बचनेका एक ही तो यह उपाय है कि सच सच जान लो। सत्य ज्ञानसे सर्व संकट समाप्त हो जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



ज्ञाता द्रष्टाऽहमेकोऽस्मि निर्विकारो निरञ्जनः ।
नित्यः सत्यः समाधिस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-८॥

मैं ज्ञाता दृष्टा हूं । मैं चैतन्य स्वरूप हूं । इसमें जो स्वच्छताका अनुभव है वह तो हुआ दर्शन, उसमें जो ज्ञेयाकार होता है या अर्थ-विकल्प होता है वह हुआ ज्ञान । जैसे दर्पणमें दोनों बात होना आवश्यक है । दर्पणमें जो निजी स्वच्छता है उसका भी परिणमन तथा स्वच्छन्दताके कारण जो प्रतिबिम्व है उसका भी परिणमन ! कुछ भी न हो खुली जगह दर्पण को आकाशके सामने रख दो तो भी सूक्ष्म रूपमें परिणमन होता ही है । यदि विश्वास न करके देखने जावो तो देखोगे कैसे ? क्योंकि दर्पणयें स्वयंका प्रतिबिम्ब पड़ जावेगा । इसी प्रकार मुझमें भी दो प्रकारका परिणमन होता है । उपयोगकी अपेक्षा क्रमशः परिणमन होता है । जो भी पदार्थ है वह सामान्यविशेषात्मक है । आत्मा भी चैतन्य गुणके कारण सामान्यविशेषात्मक है । आत्माका सामान्य प्रतिभास या समस्त जगतका सामान्य प्रतिभास कहो एकही बात है । दोनों का अर्थ एक ही है प्रतिभासके समय सब पदार्थोंका जो सामान्य प्रतिभास है उसकी यदि ये खबर लग जावे तो वह ज्ञान वन जायेगा ।

सामान्य प्रतिभासमें तो उस प्रतिभाकी खवर ही नहीं रहती, और यदि खबर रहे तो ज्ञान कहा जावेगा । सामान्य प्रतिमास किसका ? यह जानना ही तो ज्ञान हो गया, जाननेका अर्थ ही ज्ञान है । यह विशेष तत्त्व बन गया । कहनेको तो मुखसे सामान्य कहा जाता है किन्तु यह विशेष तत्त्व बन गया । सर्व पदार्थगत सामान्य उपयोगमें अकेले नहीं आ सकता । पदार्थोंका सामान्य प्रतिभास आत्मप्रतिभासरूप ही है । विषय कहते हैं पदार्थको विषयी कहते हैं आत्माको । सामान्य प्रतिभासरूप परिणमन जो प्रतिभास है वह विषयीको भी नहीं पकड़ता ! किन्तु उसको करने वाला कौन वह हुआ विषयात्मक । सामान्यकी भी पकड़ हो जावे तो वह ज्ञान बन जावे किन्तु सामान्य प्रतिभास हो जाता है, उसकी पकड़ नहीं होती । यथार्थमें दर्शन कब हुआ इसकी खबर न पहिले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



होती न बादमें न अनुभव ही होता है। सामान्य प्रतिभास होता सबके है और उस प्रतिभासका विषय भूत तत्त्व निज तत्त्व होता है किन्तु वह मैं ही तो हूं ऐसा अनुभव विषयभोगके संस्कार वाले मोही प्राणी नहीं कर सकते हैं। ज्ञानी पुरुष ही उसे स्वीकार कर पाता है। ऐसी बात उपयोगरूप प्रयत्न द्वारा साध्य है। केवल वचनोंसे उसका अनुभव नहीं होता। एक कथानक है कि सब कौरव पाण्डवोंके साथ भी धर्मराज (युधिष्ठिर) भी अध्ययन करते थे। गुरू जी ने पढ़ाया कि गुस्सा मत करो। सबने पाठ सुना दिया किन्तु युधिष्ठिरने कहा कि अभी याद नहीं हुआ। चार पांच दिन तक गुरू जी के पूछने पर यही उत्तर देते रहे कि अभी याद नहीं हुआ। गुरू जी को बहुत क्रोध आया कि इसमें याद न होनेवाली कौन सी बात है अतः उन्हें पकड़कर पिटायी की! काफी पिटनेके बाद भी जब युधिष्ठिरको क्रोध नहीं आया तो वे बोले कि गुरूजी अब याद हो गया। इसी प्रकार वचनोंसे क्या होगा।

जब निर्विकल्परूपसे निर्विकल्प प्रतिभास करे तो दर्शनका फिट बैठ जाना हो सकता है। यह दर्शन है इस प्रकार यदि फिट बैठाया जावे तो यह भी ज्ञान हो गया। देखना और जानना ये जीवके धर्म हैं। इस संसारमें कोई किसीका नहीं। मैं तो चैतन्य स्वरूप एक हूं इस प्रकारका विचार करना चाहिये। किसीसे भी पुत्र या पत्नीसे आदि किसीसे भी कितना ही प्रेम क्यों न हो किन्तु हैं सब अलग-अलग ही! कषायसे कषाय मिल गयी तो दोस्ती, अन्यथा दुश्मनी। जैसे कोई छोटा बच्चा खेल रहा है दूसरा भी वही खेल जानता है तो दोनोंकी तुरन्त दोस्ती हो जावेगी और प्रतिकूल दशामें दुश्मनी। इससे अधिक मित्रता व शत्रुतामें मर्म ही क्या है। ज्ञानी पुरुष ही समर्थ हैं कि वह अपनेसे अनुकूलको भी एवं प्रतिकूलको भी निभा लेता है। किन्तु अज्ञानी प्राणी अपनेसे प्रतिकूलको नहीं निभा सकता! मैं द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव,की अपेक्षा एक हूं मैं विकार रहित हूं! स्वभाव दृष्टिके कारण निर्विकार हूं। अर्थात् सरसताकी दृष्टिसे उपाधि बिना हूं। यदि ये कैसा है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



इस प्रकारका वर्णन किया जावे तो वह भी निर्विकार ही किया जावेगा। कैसी दृष्टि बनायें कि ये रागादि भाव पौद्गलिक दिखाई देवें। या चिदाभास दिखायी देवें। उपादानपर दृष्टि देवें या निश्चयनयपर! यदि परभाव हैं तो आत्मासे क्या मतलब ? स्वभाव और विभाव दोनों क्या एक साथ रहेंगे। मैं निर्विकार हूं। निरन्जन हूं—अंजन रहित हूं, अर्थात् उपाधि रहित हूं। चैतन्य शक्ति ही मेरा सर्वस्वसार है। पर पदार्थ में ममताके परिणाम न हों तभी शान्ति प्राप्त होती है। जब तक पर पदार्थ में ममताके परिणाम हैं तभी तक अशान्ति है। इसको मिटानेवाली स्वभावदृष्टि ही है। यदि गीदड़ोंके बीचमें पले शेरके बच्चेको किसी प्रकार यह मालूम हो जावे कि मैं शेर हूं तभी उसे सुख है। और जब तक पता नहीं तभी तक गीदड़ है, पता लगते ही वही शेरका शेर। इसी प्रकार कोई प्राणी यदि कितना ही हट्टा कट्टा क्यों न हो यदि उसे सन्तोष नहीं तो वह दुखी ही है और दूसरा बूढ़ा बीमार, कमजोर होते हुए भी यदि वह सन्तोष धारण करता है कि मैं स्वरूपमें स्वस्थ हूं तो वह निरोग है सुखी है। अतः अपनी आत्माकी दृष्टि ही सुखकी दिलानेवाली है। मैं यदि न था तो आज न होता यदि कभी न रहूंगा तो आज भी मेरी सत्ता नहीं होनी चाहिये थी। वर्तमानकी सत्ता ही सिद्ध करती है कि मैं अनाद्यनन्त हूं। जो सत्में हो उसे सत्य कहते हैं मैं सत् हूं। मुझमें जो होय वही सत्य है। अपने आपके स्वरसत्तामें है वही सत्य है। जो चित् स्वभाव अपरिवर्तित है चेतनायुक्त है ऐसा मैं समाधिमें रहने वाला तत्त्व हूं। सम्—आधि इसके मूल शब्द हैं आधि, सम् उपसर्ग है, आधि मानसिक कष्ट है, जहाँ मानसिक व्यथा शान्त हो उसे समाधि कहते हैं। उप, उपसर्गके लग जानेपर उपाधि बनता है। उपाधिका तात्पर्य ही है कि जो मानसिक क्लेशके समीप ले जावें। ऐसी जो उपाधि, व्याधि जहाँ शान्त हो गई वह समाधि है अर्थात् रागद्वेषरहित परिणाम ऐसा मैं ज्ञाता, दृष्टा, निर्विकार, निरन्जन, नित्य अकेला हूं। यही मेरा स्वभाव है। अन्य कोई विश्वास बनाना कि मैं ऐसा हूं सो स्वरूपदृष्टि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



से बाहर है। यदि कोई मुनि विचार करे कि मैं मुनि हूं मुझे असत्य नहीं बोलना चाहिये इस प्रकारके विकल्पसे क्या वह स्वरूपकी ओर है? नहीं। वह पर पदार्थ में है। किन्तु उन्हें इस प्रकारका विकल्प होता नहीं है! उनमें सहज ही संयम रहता है जैसेकि कोई आदमी किसी कार्यको करनेमें बहुत निपुण होता है तो वह उस कार्यको सहज ही कर लेता है उसके लिए सोचना नहीं पड़ता, विचार नहीं करना पड़ता! उसी प्रकार इनके भी समिति गुप्ति सहज ही हो जाती हैं। उपयोग नहीं लगाना पड़ता! मैं चेतन स्वरूप हूं, यह दृष्टि रखनेसे दुःख नहीं होता। किन्तु जो अन्तरंगसे यह मानता है कि मैं स्त्री हूं या पुरुष हूं वह मिथ्यादृष्टि है! जहाँ प्राणी इतना विचार करता है कि न मैं किसीका पुत्र हूं न किसीका पिता, पर पदार्थ में मेरा कुछ नहीं वहाँ यह भी विचार करना चाहिये कि न मैं पुरुष हूं न स्त्री हूं। ऐसी प्रतीति अन्तरंगसे नहीं करनी चाहिये कि मैं अमुकका अमुक हूं, स्त्री हूं या पुरुष हूं। मैं तो चैतन्यमात्र एक तत्त्व हूं! तो वह ज्ञाता द्रष्टा की क्रियामें लग गया समझो। जैसे खरगोशका शिकार करनेवाले शिकारी प्रायः अपने साथमें कुत्ता रखते हैं, खरगोश भाग-भागकर आगेकी झाड़ियोंमें छिपकर बैठ जाता है और अपने कानोंसे अपनी आँखोंको ढक लेता है तथा यह समझता है कि अब मुझे देखनेवाला कोई नहीं। तब यदि शिकारीकी नजर उसपर न पड़ी तो आरामसे पड़ा रहता है किसी प्रकारका विकल्प नहीं करता। उसी प्रकार उपयोगमें यदि वे बातें न आवें तो कोई विपदा नहीं, उपयोगमें बातें आ रही हैं इसीलिए विपदा है।

जैसे किसी सम्बन्धीकी मृत्यु हो गयी और पत्र नहीं, तब कुछ भी विकल्प नहीं है। वह तो उसी प्रकारसे रहता है जैसे पहिले था किन्तु पत्र आया और उपयोगमें वे बातें आ गयीं लो दुखी हुआ वह भी तो सब विकल्पमात्र है। व्यर्थके विकल्पमें उलझ कर दुर्लभ मनुष्यके क्षण गमाना अविवेक है। अतः मैं तो ज्ञाता, द्रष्टा हूं, सो ऐसा ही उपयोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



करके मैं अपने आपमें अपनेको निरखूं। यह मैं मैं मात्रमें ही हूं, अद्वैत हूं, एक हूं। इस स्वरूपसत्तामात्र मुझमें विकार नहीं है। विकार आते भी हैं तो आवो, वे विकार मेरे स्वभावसे नहीं उठते। मैं तो स्वभावमात्र हूं अतः निर्विकार हूं। जहां विकार ही नहीं प्रतीत होते हैं वहां भिन्न सत् अञ्जन (उपाधि) की कथा ही क्या है सो मैं निरञ्जन हूं। मैं तो सत्य हूं, केवल निज सत्में होनेवाले तत्त्वमात्र हू अतः सत्य हूं। स्वयं समाधानरूप हूं, शान्त हूं सो समाधिस्थ हूं। ऐसे सहज चैतन्यस्वरूप मात्र मैं अपनेको यथार्थ परमार्थरूपमें देखूं और सर्व विकल्प संकटोंसे मुक्त होकर अपनेमें अपने आप सुखी होऊं।

अमरोऽहमजन्माऽहं निःशरीरो निरामयः।
निर्ममो नैर्जगत्योऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥ १-९ ॥

मैं अमर हूं, मरण रहित हूं। मरते समय जो दुःख होता है वह वियोगका दुःख होता है। अज्ञानीका मरते समय अज्ञान जैसा भाव होता है! जैसेकि अज्ञानी जीव कहता है मरते समय कि मुझे वह छोटा दो वर्षका बालक दिखा दो अब तो मेरे प्राण छूटने वाले हैं। ये रागद्वेषके भाव मरते समय तक भी अज्ञानीके ही होते हैं। किन्तु ज्ञानीके इससे विपरीत भाव होते हैं। वह यही सोचता है कि मेरी आत्मा तो अमर है. मेरा इस संसारमें कोई नहीं, मैं एक हूं, चैतन्य स्वरूप हूं। अज्ञानीमें अज्ञानकी लीलाकी हद होती है तथा ज्ञानीमें ज्ञानकी लीलाकी हद होती है। मैं तो मरणरहित हूं और जन्मरहित हूं अजन्मा हूं, शरीर रहित हूं। मैं तो अपने वास्तविक स्वरूपमें हूं। शरीर-शरीरमें है और मैं अपनेमें हूं। किन्तु ऐसा कुछ हो रहा है प्राणियोंकी प्रकृतिमें कि उसके विषयमें सोचा भी नहीं जा सकता! एक तो ऐसा दुःख है जिसे भुलाया जा सकता है, जैसे कांटा लग गया, कुछ चुभ गया, उससे दुखी होता है किन्तु दूसरा जो दुःख है उसमें समताभाव रखना बहुत कठिन तपस्या करना है। जैसे किसीने किसीको कुछ बात कह दी तो वह उसको लग जाती है, तात्पर्य यहकि अपने विपरीत कहनेपर जो क्षोभ होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



वह क्षोभ न होना चाहिये। किन्तु प्राणियोंके प्रायः ऐसा धैर्य होता नहीं किसीने कोई कड़वी बात कही तो वह भुलाये नहीं भुलाई जाती। सबसे बड़ी मूर्खता यदि है तो यही है कि दूसरोंके द्वारा प्रतिकूल कहनेपर अहित महसूस करना! दूसरोंकी बात सुनकर शल्य पैदा करना। ज्ञानी की बातें ही विलक्षण हुआ करती हैं, जैसे सुशीला उपन्यासमें कथा आती है कि एक स्त्री किसी पुरुषसे एकान्तमें स्नेहकी बातपर बाध्य कर रही थी, पुरुषने उसको स्वीकार नहीं किया। स्त्री बोली कि यदि तुम मेरा कहना न मानोगे तो मैं तुम्हें कलंकित कर दूंगी, बदनाम कर दूंगी, तो उसने अपने ज्ञानसे ही उत्तर दिया कि यदि मैं अपने ज्ञानमें कलंकित हूं तब तो बुरा होगा अन्यथा तुम मेरा कुछ नहीं कर सकती? यही तो ज्ञानीका ज्ञान है। अतः यही विचार करना कि मैं शरीररहित हूं शरीर-शरीर है, मैं-मैं हूं। शरीरको देह भी करते हैं किन्तु दोनोंका अलग-अलग तात्पर्य है! दिहयन्ते सञ्चीयन्ते यत्र परमाणवः सः देहः। और शीर्यन्ते यत्र परमाणवः स शरीरः॥ प्रायः २०-२५ वर्ष तककी आयु के तनको देह कहते हैं और उसके बादकी अवस्थाको शरीर कहते हैं। आत्मा तो अमूर्त है उसमें कहां की फुन्सी कहां के फोड़े वह तो अमूर्त है। आत्मा तो सदा आनन्दमय है। बस बुरा काम न करो फिर कुछ नहीं। नहीं तो सारी शल्यें जीवन भर लगीं रहती हैं! सब जीव सुखी होवें ऐसा विचार करनेसे अपना बिगड़ता भी क्या है। अपनी भावना स्वच्छ रखें किसी का भी बुरा न सोचें! किसीके प्रति दुःखकी बात न सोचें। जरासी देरके लिए मानो यदि अपना सोचा हुआ दूसरेके प्रति अनिष्ट हो भी गया तो इस आत्मामें क्या वृद्धि हो जावेगी।

अतः हे प्राणी! सबके प्रति अच्छी भावना भाओ सबसे पहिले यही काम है। गाली भी यदि कोई दे देवे तो भी यही सोचो कि चलो यह तो मुफ्तमें ही खुश हो गया, सुखी हो गया क्योंकि किसीको भी सुखी देखनेके लिए कुछ न कुछ उसकी खुशीके लिए खर्च करना पड़ता है। अतः उसको गाली देकर सुख प्राप्त हो जावे तो इसमें मेरी क्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हानि ? मैं तो चैतन्यस्वरूप हूं ! मैं लोक रहित हू, ममता रहित हूं, कर्मके उदयको निमित्त पाकर होने वाला जो मोह भाव मैं उससे भी रहित हूं ! अपनेसे ये जगतके समस्त पदार्थ भिन्न हैं तथा मैं इनसे भिन्न हूं ! ऐसा अपनेमें विचारे ! सम्यग्दृष्टि केवल शुद्धउपयोगमें ही जीवन व्यतीत करते हैं ! उन्हें न खानेकी चिन्ता, न कमानेकी, न स्त्री पुत्रा-दिककी ! उनकी अपनी गोष्ठी रहती है तथा शुद्धोपयोगमें समय व्यतीत करते हैं। हमारा भी उत्कृष्ट काम यही होना चाहिये कि—हम सम्यक् दृष्टि बनायें, सबके प्रति अच्छे भाव रखें देखो सबको खुश कोई नहीं कर सकता अतः पर मुझ पर खुश हों यह भाव व्यर्थ हैं। एक सेठ था, उसके पांच लाख रुपये थे व ४ थे बेटे। अतः उसने चारों बेटोंको एक-एक लाख रुपया बांट दिया और एक लाख रुपया अपने लिए रख लिया ! फिर कुछ समय बाद कहा देखो अपन सब खुशी ही खुशी न्यारे हो गये। नहीं तो न्यारे होनेमें बरबादी हो जाती—अब तुम लोग सुखसे-अलग हो गये, बिरादरीको जिमाना चाहिये। बड़ी खुशीकी बात है कि कोईसे किसीका झगड़ा तक नहीं हुआ और अलग २ भी हो गये। अतः अब यह शुभ काम अवश्य करना चाहिये। सबसे पहलें छोटे लड़केने बिरादरीको जीमन दिया उसने अच्छा २ खाना बनवाया और सब प्रकारकी मिठाई बनवायी। बिरादरी आयी और जीमने लगी! जीमते-जीमते कहती जावे कि मालूम तो ऐसा पड़ता है कि पिताने अपना सबसे अधिक भाग इसी छोटे लड़केको दिया है तभी तो इसने इस प्रकार खर्च किया। अब देखो खा भी रहे हैं और बुराई भी कर रहे हैं ! फिर दूसरेने दावत दी तो उसने केवल तीन मिठाई बनवायीं। तो जीमते-जीमते बिरादरी कहती है कि ये लड़का तो बहुत बदमाश है। इसने तीन ही मिठाई बनवाकर अपना काम बना लिया। फिर तीसरेने जिमाया। उसने केवल साग पूड़ी ही बनवायी। जीमने वाले बोले कि यह लड़का सबसे अधिक बदमाश है इसने तो साग पूड़ीमें ही टाल दिया। फिर चौथेने जिमाया। उसने केवल चनेकी दाल और रोटी ही जिमायी। जीमने वाले बोले कि सबसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अधिक पूरा बदमाश यही है इसने तो बनवाया ही कुछ नहीं। और सबसे बड़ा लड़का है सो धन पूरा ही रख लिया होगा, तात्पर्य यह है कि इस जगतमें प्रशंसाकी दृष्टिमे वैभवादि एकत्रित करना व्यर्थ है। जनता सारी ही प्रशंसा करे यह सम्भव नहीं। महावीर स्वामी जब थे तो उनकी भी सभी प्रशंसा नहीं करते थे कोई उन्हें मायावी कहता था कोई कुछ। अत: हे प्राणियों! जो तू प्रशंसाकी दृष्टिसे ये सब वैभवादि बढ़ा रहा है ये सब व्यर्थ है। अत: जितना हो सके मनुष्यको धनादि वैभव परोपकार में कर देना चाहिये अन्यथा पछतावा होगा। एक सेठ था उसके पास धन बहुत अधिक था पर था कंजूस। तो उसने काफी तो अपने लड़कोंमें बांट दिया, फिर बचे हुए धनको भीतोंमें चिनवा दिया! मरनेका समय आया तो उससे बोला न जावे ऐसी दशा हो गयी उसकी! पंचलोग उसके पास आये और बोले कि क्यों भाई क्या कुछ अबभी दानमें देना है या नहीं? अब तो तुम्हारा मरणकाल समीप ही आ गया है। सेठ जी अब अपना साराका सारा ही धन दानमें देना चाहते थे क्योंकि घरमें लड़कोंका भी व्यवहार उनके प्रति अच्छा न रहा था। अत: उसने इशारेसे प्रकट किया कि हां मैं जो कुछ यह सब धन भीत में रखाहै वह सब दान करना चाहता हूं। पंच लोग इस बातको समझ न सके। तो उनके लड़कोंसे पूछा कि तुम्हारे पिता जी क्या बता रहे हैं? तो लड़के बोले कि पिताजी कह रहे हैं जितना धन था वह सब तो ये मकान आदि बनवानेमें खर्च हो गया। अब बचा ही क्या जो दानमें देवें अब वह सेठ सुन तो सभी रहा है किन्तु बोल कुछ नहीं सकता। वह मनमें कुढ़ रहा था कि लड़के सब कुछ जान रहे हैं पर छल कर रहे हैं। अब सोचो कि कितना कष्ट हुआ होगा उसको! मानव इसलिये धन नहीं बढ़ा रहे कि मैं आगे भूखों मरूंगा अत: काम आ जावे। बल्कि इसलिए कि मेरी इस धनके कारणही बड़ाई होगी, इज्जत होगी, पोजीशन बनेगी! सब मुझे अच्छा कहेंगे। लेकिन यह सब व्यर्थका विकल्प जाल है अत: इन सबको छोड़कर अपने धर्मका पालन करना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


ही तत्त्वकी बात है ! मैं ममतारहित हूं। पर पदार्थके द्रव्य गुण पर्याय रूप नहीं, ऐसा जानकर अपने स्वरूपमें ध्यान लगाओ, ये कर्मजाल भी नष्ट हो जावेंगे ! अब सोचो यदि एक बच्चेके हांथमें खिलौना देखकर दूसरा भी रोने लगता है अब उसको चुप करना है तो कैसे किया जावे ? यदि उसे पीटा जाय तो और भी रोवेगा और यदि उस बच्चेका खिलौना ! छीन कर उसे दिया जावे तो वह भी रोने लगेगा, अतः सीधा उपाय यही है कि उसे और दूसरा खिलौना दे दिया जावे। उसी प्रकार ये पदार्थ रूपी खिलौना तो पास आ नहीं सकता तब रोना बन्द करनेका एक यही उपाय है; कि अपना जो स्वभाव रूपी खिलौना है उसका ध्यान करे। उसमें रमण करो। ऐसा करता हुआ मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी हो सकता हूं।

मैं स्वयं तो सर्व सर्वकल्याणमय हूं सत् हूं अतः अमर हूं किन्तु प्राकृतिक मायारूप प्रभावोंको अपना कर अपनेको मरनेवाला समझ लिया इसी कारण मैं मरणके दुःखसे त्रस्त होता हूं। मैं अनादिसिद्ध सत् हूं, परिपूर्ण हूं मेरे जन्मकी आवश्यकता भी नहीं और न मेरा जन्म होता है किन्तु प्रकृतिजन्य (कर्मोदयप्रभाव) स्कन्धोंका संयोग व उस बीच अपने आपको समझकर मैं जन्मका भ्रम कर लेता हूं और इससे दुखी रहता हूं। मेरा तो मेरा चैतन्य स्वरूप मात्र है मेरे शरीर कहां है। जब शरीर ही मेरे नहीं तो रोग मेरे कहांसे होंगे। तथा जब शरीर भी मेरा नहीं है तो अन्य चीजोंकी कथा ही क्या। इस कारण न मेरा यह जगत है और न जगतका किसीका मैं हूं। ऐसे सबसे निराले अद्वैत ज्ञायक स्वरूपमात्र अपने आपमें मैं रहूं और आनन्दमय बनूं।

नोपद्रवो न मे द्वन्द्वो निर्विकल्पोऽपरिग्रहः ।
श्यः कैवल्यदृष्ट्याहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-१०॥

दोरी आत्मा चैतन्य स्वभावमय है। मैं चेतना शक्तिमात्र हूं। इसमें दूसरी चीजका प्रवेश नहीं ! अतः इसमें कोई उपद्रव नहीं हो सकता। मैं ही उपद्रव मानूं और दुख मानूं तो वह मेरी ही ओर से उपद्रव होगा!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



परकी ओर से नहीं! परकी ओर से उपद्रव किसीभी अन्यपदार्थमें नहीं होता परपदार्थमें दूसरेके द्वारा उपद्रव नहीं होता वल्कि नैमित्तिकपरिणमनहै। ऐसा वस्तुका स्वभावहै जिसे विभाव स्वभाव कहाहै! वाह्यका निमित्त पाकर परिणमन हो वह तो है किन्तु वाह्यसे उपद्रव नही; निमित्त पाकर होता है। एक दृष्टिसे तो सभी निमित्त उदासीन होते हैं, किन्तु एक दृष्टिसे कोई उदासीन होता है कोई प्रेरक होता है, एक दृष्टिसे दूसरेका ही अपराध माना जाताहै, एक दृष्टिसे न उपद्रवहै न निमित्तहै न उपादानहै। किसी पर पदार्थके कारण मुझमें उपद्रव नहीं किन्तु मैं ही कल्पनासे उपद्रव मानता हूं। मुझमें उपद्रव नहीं है। ये सब स्वभाव दृष्टिसे समझे गये उपयोगकी बात बनी रहे तो उपद्रवभी न जंचे। यदि कोई व्यक्ति पैर घसीटकर चलरहा है, अथवा टेढ़ी चालसे चलरहा है, यद्यपि अपनेसे उसका परिचयभी नहीं किन्तु फिरभी दिलमें बुरा महसूस होता है। देखो परपदार्थसे यहउपद्रव नहींहै किन्तु कल्पनाके कारण ऐसा अपनेमें मानता है। लक्ष्मण और परशुरामका विरोध था वह इसकारण कि ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंका नाश किया और क्षत्रियोंने ब्राह्मणोंका नाश किया। अतः इनका भी आपसमें विरोध था। जब ये दोनों आमने सामने आये तो लक्ष्मणने परशुरामको कहा कि तुम मेरी आंखोंके सामनेसे हट जाओ और भी दो चार उल्टी सीधी बातें सुनायी; तब परशुराम जी ने कहा-कर विचार देखो मनमांहीं, मूंदहु आंख कतहु कोउ कुछ नाहीं।" अर्थात तुम यदि आंखें बन्द कर लो तो तुम्हें स्वयं ही कुछ दिखायी नहीं देगा। उसी प्रकार लोक दृष्टिकी आंख बन्द कर लेनेपर कोई उपद्रव ही नहीं है। अपने स्वभावसे च्युत होनेको तथा परकी दृष्टिहोनेकोही उपद्रव समझो। अतः मुझमें कोई दन्दफन्द नहीं। यह दन्द शब्द द्वन्द्वसे बनाहै जिसका तात्पर्य दूसरा, अतः जब मुझमें दूसरा कुछ नहीं तो दन्दभी नहीं और फन्दभी नहीं क्योंकि दन्दके होने पर ही फन्द होता है तो जब दन्द ही नहीं तो फन्द कैसे होगा? मैं तो चैतन्य स्वभाव वाला हूं, निर्विकल्प हूं मेरा काम ही स्वच्छ रहना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अपनेको स्वच्छ सुरक्षित रखकर रागादिको पौद्‌गलिक समझे इसका नाम विवक्षित एकदेश शुद्ध निश्चयनय है। मैं परिग्रहसे रहित हूं। मेरा जो तत्त्व है उसमें अन्य कुछ नहीं। तब परिग्रह क्या लगा। यही विचार अपरिग्रही कहलाता है। वाह्य परिग्रहका त्याग तो निष्परिग्रह आत्मतत्त्वकी भावनाका फल है। जब अपने आपके आकिंचन्य की भावना बढ़ गई, तब इसके होनेपर परिग्रह सम्हाले कौन, अतः छोड़ना ही पड़ता है। उदारता भी उसी के बढ़ती है जो आकिंचन्यकी, निष्परिग्रहकी भावना करे! उच्च परिणामोंका होनाही सबसे बड़ी उदारता है! अतः कषायोंको मत पकड़ो। अपने प्रति कोई कैसा भी व्यवहार क्यों न करे किन्तु उसके प्रति रंचमात्र भी रंज, विषाद न लावे यह सबसे बड़ी बात है।

जीवनमें आगे बढ़नेका सबसे पहिला यही काम है! यह तो कठिन है कि अपने शरीरमें पीड़ा हो और अनुभूति न हो, यह भी कठिन है कि जिस वस्तुकी इच्छा हुई वह प्राप्त न होनेपर विषाद न हो किन्तु इसमें क्या कठिनाई है कि यदि किसीने प्रतिकूल वचन बोल दिया तो महसूस न करें उसके प्रति विषाद ईर्ष्या न रक्खें। उसके प्रति कषाय रखना इसी का नाम तीव्र कषाय है! सबसे बड़ी जीवनकी शिक्षा यही है! कोई भी उपद्रव क्यों न आवे बस यही विचार करे कि मैं तो चैतन्य स्वरूप हूं अन्य कुछ नहीं! एक सुनार और एक सेठ पड़ौसी थे। सेठ धनवान था सुनार गरीब! किन्तु इतना होने पर भी सेठ उसे तंग ही करता रहता था। किन्हीं कारणोंको ढूंढ़-ढूंढ़कर उसे तंग करता था, हानि पहुंचाता था जिससे उसकी हानि हो सके। किन्तु यह सब होते हुए भी सुनार सेठके प्रति अच्छे भाव रखता था, उसका भला ही विचार रहता था! सेठने कारण न रहने पर भी उसे हानि पहुंचानेके प्रयास किये, किन्तु सुनारने हानि पहुंचानेके साधन रहते हुए भी उसे हानि न पहुंचाई। एक वार सेठके यहां डाकू आ गये उसके ऊपर लट्ठसे पिटाई करना चाहते ही थे कि सुनारने देखा और स्वयं वीचमें आ गया, अपने आप पिट गया घायल, हो गया किन्तु सेठको बचा लिया। उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



दिनसे सेठके भी विचार वदल गये, और सुनारसे सेठने अपनी गल्तीकी माफी मांगी। अतः हे प्राणी ! सबके प्रति क्षमाभाव धारण करो चाहे वह अनुकूल है या प्रतिकूल ? देखो तो, जैनधर्म पाया जैनकुलमें पैदा हुए, देवदर्शन भी पाया, समागम भी ऋषियोंका प्राप्त होता ही रहता है, शास्त्र भी सुननेको मिलता रहता है। ये सब होते हुए भी यदि हम कम से कम इतनी बात न कर सके कि क्षमाका भाव धारण करें तो समझो कि प्रतिकूल बोलनेवालेपर क्षमाभाव न करके उस बातको और कठिन बना लिया।

यदि क्षमा भाव रखते तो वह उपद्रव वहीं समाप्त हो गया होता किन्तु उसमें विषाद करके आगे के लिये उस बातको कठिन कर दिया। क्षमा करनेसे मेरा घटता भी क्या है, जितना भी क्षमाभाव धारण करोगे उतनीही इज्जत प्राप्त होगी ! यदि इस प्रकार अपनेको बना पाये तो समझो कि हम भगवानके कुलमें सम्मिलित हो गये उनके वंशके हो गये। यह कुटुम्ब जिसे प्राणी अपना मान रहा है यह तो विनाशीक है किन्तु भगवानका कुल सत्य है, अतः उस भगवानके कुलके लिए यदि अपना विनाशीक यह लौकिक कुलभी छोड़ना पड़े तो सहर्ष त्याग कर देना चाहिये। किन्तु भगवानका कुल नहीं छोड़ा जा सकता ! सब कुछ सहन हो सकता है किन्तु धर्मपर आक्षेप सहन नहीं हो सकता। जैसे सब काम फिर हो जावेगा ऐसा कह कर टाले जा सकते हैं किन्तु देवदर्शन के समय दर्शन न करे यह अपनेको सहन नहीं होगा ! जो अपना हित किसमें हैं इसकी वास्तविकताको पहिचान गया वह अपना न तो धर्म छोड़ सकता है न उसपर आक्षेप ही सहन कर सकता है।

मैं परिग्रहरहित हूं। समस्त इन्द्रियोंको वशमें करके स्थिर होकर अपने आपमें जो दीखता है वही आत्मतत्त्व है। इस प्रकार आत्मतत्त्वकी जो भावना भाता है उससे परिग्रह धारण नहीं हो सकता ! अतः मैं अपरिग्रही हूं। वह जीव निज परमात्मतत्त्वकी दृष्टिको ही हित मानता है परिग्रहको नहीं ! यह आत्मा सम्यक् दर्शन, ज्ञान,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



चरित्रकी दृष्टियोंसे भी नहीं दिख सकता, एक कैवल्य दृष्टिको छोड़कर। अत: मैं अपनेको कैवल्य दृष्टिसे देखता हुआ अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं! घर ग्रहस्थी चलाते हुए सब कुछ सहते हैं, लड़ाई झगड़ा, मुकदमा आदि आदि किन्तु जब ही स्वभावदर्शन धारण किया कि सब कुछ क्षण भरमें छूट गया। पद्‌मपुराणमें बताया है कि—उदय-शंकर अपनी बहिनको लेने आया तो उसका जीजा जो वज्रभानु वह उसकी बहिनसे बहुत ही मोह करता था अत: मोहवश वह भी उसके साथ हो लिया! रास्तेमें वन पड़ा वहाँ एक मुनि तपस्या कर रहे थे। तो यह वज्रभानु उनकी ओर देखता ही रह गया और उसे वहीं वैराग्य हो गया, सालेने मजाक करने हेतु कहा कि—क्या तुम भी मुनि होना चाहते हो तुम तो देख ऐसे ही रहे हो। वज्रभानु इसी पशोपेशमें पड़ा था कि मैं इनसे क्या कहकर इजाजत मागूं किन्तु स्वयं ही कारण मिल जाने पर बोला यदि मैं दीक्षा ले लूं तो क्या तुम भी ले लोगे। उदय-शंकरने सोचा कि यह तो महा मोही है यह क्या दीक्षा लेगा अत: प्रकट में कहा कि ठीक है मैं भी ले लूंगा। वज्रभानुने तुरन्त ही दीक्षा धारण कर ली। उदयशंकर आश्चर्यसे उसे दे ता ही रह गया! और फिर क्षण भरमें ही उसे भी वैराग्य हो गया। यह बात नहीं कि उसने वज्र-भानुके शब्दोंको यादकर ऐसा किया किन्तु वह मुनिकी मुख मुद्रा ही ऐसी शान्त और आनन्दयुक्त भाव वाली थी कि वैराग्य हो जावे। और वज्रभानुका आश्चर्य कारक चरित्र देखा कि वैराग्य हो गया फिर अन्तमुहूर्त में ही उस औरतको भी वैराग्य हो गया। बताओ क्षण भर में क्या से क्या हो गया। जा रहे थे कहाँ, पहुंच कहाँ गये, न इधर खबर है न उधर! और हम ऐसे मोहमें पड़े हुए हैं कि यदि कहीं सफर में रेल आदिसे जाते हैं तो अगले-अगले स्टेशनसे पत्र डालते रहते हैं कि अब मैं अमुक स्थान पर पहुंच गया, अब अमुक स्टेशन आवेगा वहां से भी पत्र लिखूंगा, मैं आराम से हूं आदि-आदि और फिर पहुंचकर पत्र डालते रहते हैं मोहवश कि अब ऐसा हो रहा है अब ऐसा होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



और यहां न चिट्ठी न पत्री बीच जंगलमें मुनिदर्शनसे मुखमुद्रा ही देखकर तीन प्राणी वैराग्यको प्राप्त कर अपनी आत्माके, अपने कल्याणमें लग गये। यह मुखमुद्रा अन्तरंगके स्वानन्दसे, सन्तोषसे ही प्राप्त हो सकती है। हम चाहे विशेष आनन्द होनेपर खूब ठठाकर हंस दें किन्तु वह मुखमुद्रा बननी कठिन है वह तो तभी होती है जबकि स्वानुभूति हो गयीं है, अपनेको पहिचान लिया है कि मैं चैतन्य स्वरूप हूं, बाह्य पदार्थोंसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं अपने आपके आत्मतत्त्वके अविचल प्रत्ययसे जो सहज आनन्द जगता है उसकी सानीका आनन्द और कोई है ही नहीं। यह मैं तो केवल शुद्ध चैतन्यमात्र हूं। मेरे कोई उपद्रव नहीं, मेरे कोई द्वन्द्व नहीं। मैं सहज निर्विकल्प हूं, समस्त परिग्रह भारसे स्वतः मुक्त हूं। अतः मैं भ्रमजालको छोड़कर अपने ही स्वरूपमें स्थिर होकर अपनेमें अपने आप सुखी होऊं।

निर्वंशश्चेतनावंशो निगृहश्चेतनागृहः।
चेतनान्यन्न मे किञ्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-११॥

मैं निर्वंश हूं। अग्रवाल, खण्डेलवाल, आदि जातिभेदसे भी रहित हूं तथा क्षत्रिय, ब्राह्मण वैश्य आदि जातियोंसे भी रहित हूं। यदि मेरा वंश ही है तो मेरा वंश चेतना है। जिसकी परम्परा अनादि से अनन्त अनन्त तक चलती रहती है। अन्य कोई वंश मेरा नहीं है। वंश वही होता है जो परम्परा बनावे। मेरी परम्परा जाति कुलादिसे नहीं बल्कि चेतनामें बनती है। अतः मेरा वंश है तो वह है चेतना। और मैं निर्गृह हूं! घर रहित हूं! महल, मकान आदि से रहित हूं! मेरा असली घर चेतना है! जिसमें हम बराबर बने रहते हैं जो कभी टल नहीं सकता, कभी हट नहीं सकता। चेतनाको छोड़कर मेरा अन्य कोई नहीं! लोकमें अन्य घर भी तो हैं फिर हम उन्हें क्यों नहीं अपना मानते, वह इसलिये कि लोक व्यवस्थामें हमें यह अधिकार है कि यहाँ से कोई हटा नहीं सकता! किन्तु पापादिकके उदयसे या कर्ज आदि के कारण कुड़की हो जानेसे यह मकान छूट सकता है। किन्तु मेरे स्वरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



से चेतनासे कोई नहीं हटा सकता ! प्रत्येक पदार्थ अपना-अपना स्वरूप रखते हैं, चतुष्टय उनका भी है। द्रव्य, समुदायका नाम है। क्षेत्र, प्रदेशका नाम है। और काल-पर्यायका नाम है। भाव शक्तिका नाम है। इनको छोड़कर उसका दुनियाँ में है क्या ? इसके अतिरिक्त दुनियांमें कुछ नहीं ! इसी प्रकार मेरे प्रदेश गुण, पर्यायको छोड़कर और दुनियाँ में है क्या ? यही चेतना मेरा घर, वंश है जहां मैं वेअटक बना रह सकता हूं। वहाँ से मुझे कोई नहीं हटा सकता ! अपना ही स्वभाव मेरा सब कुछ है। इससे अन्य कुछ नहीं। जिसकी जैसी प्रवृति है उसका उसी रूप परिणमन होगा। उसे देख दुखी न होवे, क्योंकि वहां पर मेरा है क्या ? जैसे किसी आलसी व्यक्तिको देखकर बुरा लगता है किन्तु ऐसा नहीं होना चाहिये ! वह जैसा है होने दो। किन्तु रागादिक परिणामोंके कारण ऐसा सब दुःख करता है। ज्ञानसे जानो कि इस का परिणमन ही ऐसा है, किन्तु उसे देखकर विकल्प करना अपराध है, अविवेक है—अतः इसे मिटानेसे ही शान्ति मिल सकती है ! यदि विपरीत मानना है तो मानते रहो उससे लाभ कुछ है ही नहीं ! जैसे छोटे बच्चे गुड्डे-गुडियाका खेल खेलते हैं उसमें छोटे कंकरोका मिठाई का रूप देकर सब क्रिया करते हैं, जो वराती बनकर आते हैं वे भी झूठ-मूठमें उन मानी हुई मिठाइयों को खानेका उपक्रम करते हैं, खाते नहीं। किन्तु यह सब है क्या केवल कल्पनाकी ही तो सब वस्तु है, क्या ऐसा करनेसे वास्तविकता आ गयी ? उसी प्रकार हम भी कल्पनामें लगे हुए हैं कि यह मेरा है आदि ! किन्तु इन सबमें कोई वास्तविकता नहीं है ! धन्य है वे ज्ञानी जो सोचते हैं कि मेरा हिती तो मेरा ही स्वरूप है अन्य नहीं ! मेरा ज्ञान मेरा ही स्वरूप है अन्य नहीं ! मेरे इस चैतन्य स्वरूपसे अन्य कुछ नहीं। वाह्य पदार्थोंसे जितना त्याग बढ़ता जाता है उतनीं ही महत्ता है ! त्यागका ही तो महत्त्व है। यदि अन्तरंगसे त्यागके भाव आ जावें तो अनन्त चतुष्टयके दर्शन हो जावें। और यदि ऐसा ज्ञान आ गया तो समझो कि उसका वेड़ा ही पार हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अतः चैतन्य स्वरूप ही मेरा स्वरूप है। चैतन्य शक्ति करके व्याप्त है स्वरूप जिसका ऐसा मैं हूं। एक जीव द्रव्यको दूसरा कोई भी जीव द्रव्य उपाधि नहीं बन सकता! सादृश्यमें सादृश्यकी उपाधि नहीं बनती ये जीव मेरे सदृश है अतः मेरी उपाधि नहीं बन सकता! विपरीत जो शरीरादि पौद्गलिक वस्तु वह उपाधि बन जावेगी। एक स्वच्छ काँचके सामने एक कांच रख दो तो वे आपसमें मलिनता जाहिर नहीं कर सकते। इसीलिए समान गुण परमाणुका समान गुण परमाणु के साथ बन्ध नहीं होता, विषम मात्रा में हो जाता है। अतः मेरी उपाधि अजीव व पुद्गलसे ही बन सकती है। वह स्वभाव मेरा नहीं मेरा स्वभाव तो चेतना स्वरूप है! आत्माको यदि समझना है तो इसका साक्षात् उपाय प्रयोग है। जैसे तैरना सीखना है तो उसका साक्षात् उपाय प्रयोग ही है।

पुस्तककी बात सीखनेमें तो मदद करती किन्तु साक्षात् उपाय प्रयोग ही है! रोटी बनाना, मुंहसे सब विधि बता दो। थालीमें इतना आटा लेना फिर आटा पतला भी न हो गाड़ा भी नहीं। पहिला पर्त कम सेकें दूसरा पर्त अधिक सेकें, रोटी ऐसे बनाना आदि आदि सब विधि बता दो। फिर उसे बिठा दो रोटी बनानेके लिए क्या वह बना देगी नहीं, साक्षात् उपाय तो प्रयोग ही है! कितना ही संगीत पुस्तक से सिखा दो किन्तु क्या वह बिना प्रयोग के सीख सकता है हारमोनियम आदि? नहीं, साक्षात् उपाय सीखनेका प्रयोग ही है! अतः यदि आत्मा के स्वरूपको समझना है तो साक्षात् उपाय प्रयोग ही है! ज्ञान मदद करे तभी, नहीं बल्कि चारित्र भी हो ताकि हम एकचित्त होकर अपनी आत्माके कल्याणमें लग सकें। बाह्य पदार्थोंके भूलनेसे ही आत्माके दर्शन होंगे! जैसे कोई सभा हुई उसमें कोई प्रस्ताव रखा गया उस पर अमल करो! किन्तु ऐसा कहने से ही क्या अमल हो गया? नहीं, जब तक प्रयोग नहीं होगा तब तक कुछ नहीं। प्रयोगसे ही विजय है। ज्ञान है, यह तो ठीक किन्तु बिना प्रयोगके काम बनेगा नहीं। हमारा समागम ऐसा होना चाहिये कि सुबुद्धि बनाकर आरामसे रह सकें नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



तो यह सब कमाने से ही क्या फायदा? सुबुद्धि बनाकर ऐसा समय निकालो ताकि दो क्षण अपनी आत्माके कल्याणमें भी लगा सकें ! किसी भी दुःखीको देखकर हम दया की बातें तो खूब करते हैं किन्तु उसे वहां से उठानेका उपक्रम नहीं कर सकते। देख रहे हैं कि वेचारा असमर्थ है गन्दे नालेमें गिर गया। न निकल पानेके कारण तड़फड़ा रहा है। हम चिल्ला चिल्लाकर इतना तो अवश्य करेंगे कि "भैय्या इसको निकालना वेचारा बहुत दुखी है। किन्तु स्वयं निकालनेके नाम पर कदम नहीं बढ़ाते नहाना पड़ेगा ना उसको संकटसे उवारकर। प्रयोग का लोकमें भी परमार्थमें भी बहुत महत्त्व है। मैं वंश रहित हूं यदि मेरा वंश है ही तो वह है चेतना। वंशको जो पवित्र करे उसे पुत्र कहते हैं, मेरा वंश है चेतना और उसे पवित्र करने वाला मैं स्वयं हूं !

जहां से कोई निकाल न सके उसे घर कहते हैं। ये ईंटोंके घर क्या घर हैं। इनमें रहनेका कुछ ठेका है क्या। एक साधू जा रहा था। उसे आगे एक हवेली मिली ! वाहर उसका चौकी-दार बैठा हुआ था ! साधूने पूछा यह धर्मशाला किसकी है। चौकीदार बोला महाराज यह धर्मशाला नहीं है ! साधु बोला हम यह नहीं पूछते हम यह पूछते हैं कि यह धर्मशाला किसकी है ? यह सब वातावरण देख नौकर मालिकके पास भागा। मालिक बोला कि महाराज यदि आपको धर्मशालामें जाना है तो हम नौकरको साथ भेज देते हैं, वह वता देगा, यह धर्मशाला नहीं है। साधु बोला–हम यह नहीं पूछ रहे हैं, हम पूछ रहे हैं कि यह धर्मशाला किसकी है ? मालिकने दिमागसे सोचा इसमें कुछ न कुछ राज अवश्य है, बिना मतलबके यह नहीं कह रहा है अवश्य ही कुछ इसमें राज है। सेठने गद्दीके पास बुलाया और कहा महाराज यह धर्मशाला नहीं है, मेरी हवेली है। साधुने पूछा इसे किसने वनवाया था। सेठ बोला महाराज मेरे दादाने इसको वनवाना शुरू किया था फिर वे तो पूरी न वनवा सके मेरे पिता जी ने इसे पूरा कराया। साधु बोला पिता जी फिर कितने दिन इसमें रहे। सेठ बोला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


कि ३ वर्ष रह सके फिर गुजर गये। साधु बोला कि तुम कितने दिन इसमें रहोगे। सेठ सहम गया। साधु बोला कि जिसे तू हवेली समझ रहा है इसमें छोड़नेके समय तुझे एक मिनट भी ठहरनेकी इजाजत न मिलेगी, हाँ उस धर्मशालामें भले ही मिल जावे मंत्रीसे कहकर। फिर धर्मशाला ही तो है इस प्राणीको ऐसा मोह लगा है, ऐसे मोह जालमें फंसा हुआ है कि यह मेरा है यह उसका है आदि ही रट लगाये हुए यह दुःख भोग रहा है। सोचो तो जब पूर्व भवका हमें कुछ ज्ञान नहीं कि हम कहाँ थे! कौन हमारे माता पिता थे? तब इस जन्मकी ही अगले भवमें क्या याद रहेगी! अतः मैं अपने चेतनाके घरको पहिचान-कर अपनी आत्माके कल्याणके मार्गपर लगूं। सदा यही भावना भानी चाहिये। विषय कषाय आदि का जल जिसमें नहीं चूता उस निज चेतनागृहको छोड़ अन्यत्र संसारकी इस बरसातमें कहां घूमूं? अतः इससे बचनेके लिए चेतना रूपी घरमें रहकर सुखी होऊं।

निर्मित्रश्चेतनामित्रो निर्गुरुश्चेतनागुरुः ।
चेतनान्यन्न मे किञ्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-१२॥

मेरा इस जगतमें कोई नहीं। लोकमें जो मित्रकी तरह दीखते हैं वे केवल विषय भोगोंमें ही साथी हैं। वास्तवमें कोई मित्र नहीं। घर कुटुम्बमें भी जिन्हें हम अपना समझते हैं, उनसे अच्छे भगवान हैं या वे पुत्र स्त्री आदि! जिसने अपने सहज स्वरूपको पहिचान लिया वे भगवानके अतिरिक्त अपने सहजस्वभावके अतिरिक्त किसी को अपना नहीं समझते और मोही जीव बाह्य पदार्थोंको ही अपना समझता है। किन्तु वास्तविकता यही है कि अपना यदि कुछ है तो वह है चेतना अन्य कुछ नहीं! उनसे, घरके पुत्रादिकों से तो पड़ौसी अच्छे हैं जो ज्ञानकी बात बताते हैं, सिखाते हैं और ज्ञानमें लगनेके लिये प्रेरित करते हैं।

ये मोही जन तो अन्धेरेमें ही रखे रहेंगे उनसे अच्छे तो वे हैं जो हितका उपदेश देते हैं। ये ज्ञानी, उपदेशक संसारके अन्त करनेमें कारण होंगे और ये रागके कारणभूत अन्धेरेमें रखनेके सिवाय कर ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


बचा सकते हैं! अतः यही सोचो कि मेरा कोई मित्र नहीं, यदि है तो चेतना। चेतना स्वभाव ही मेरा मित्र है। इसी प्रकार मेरा कोई गुरुभी नहीं है। गुरू तो सूर्यकी तरह होते हैं, सूर्यका काम है, प्रकाश कर देना याने मार्ग बता देना मार्ग दिखला देना! किन्तु जब हम चलेंगे तभी तो वहाँ पहुंच सकते हैं चलना तो मुझे ही पड़ेगा। इसी प्रकार गुरु मार्ग बताने वाले हीं हैं सही ज्ञान देनेवाले हैं किन्तु यदि मैं उस पर आचरण करूंगा तभी तो मेरा हित होगा! अतः वे मार्ग बतानेमें कारण तो हैं उसमें सूझ बनाओ तो कल्याण है। उस पर चलना तो तुम्हें ही है। अतः मेरा गुरू मैं स्वयं हूं। तुम्हारे गुरू तुम हो! मेरा स्वभाव ही मेरा गुरू है। चेतनाको छोड़कर अन्य मेरा कुछ नहीं। जिस मोहमें फंसे हुये हम सोचते हैं कि अमुक बहुत अच्छा है, वह सब विपदाका कारण है। विपदाका कारण होता है, अज्ञान! जो हितकी अभिलाषा करे, हितकी बात बतावे, हितके मार्गमें चला देवे उसे गुरू कहते हैं। वास्तवमें कोई न मेरा हित चाह सकता, न अभीष्टका मार्ग बता सकता, न अभिलाष करा सकता! जो कुछ करूंगा मैं ही करूंगा! कोई यदि करुणा करेगा तो उसका उसमें ही परिणमन होगा, मेरा कुछ नहीं, सब कुछ करना तो हमें ही पड़ेगा! अतः वस्तुतः मेरा कोई गुरू नहीं है। मैं ही अपना गुरू हुआ। तुम्हारे गुरू तुम स्वयं हो। मेरा सब कुछ मैं ही हूं। उस आत्मतत्त्वकी श्रद्धा करो, दृष्टि लगाओ तो ये सब विपदायें नष्ट हो जावेंगी! जन्म जरा मरणके चक्कर मिट जावेंगे। अन्यथा दुनियामें देखे जानेवाले ये दुःख सहन करने होंगे। सोचो तो एकन्द्रिय जीवोंमें पृथ्वी भी हमही बने, दूसरोंके द्वारा तोड़े गये, फोड़े गये, खोदे गये, गीला किया गया, क्या कष्ट नहीं पाये। हमही जल भी बने—उसके दुःख देखो—गर्म किया गया, ठण्डा किया गया कीचड़में मिलाया गया बहाये, गये दुःख हमने ही तो सहन किये। अग्नि बनकर उसके दुःख देखो वह जलाया गया, पीटा गया आदि यह सब दुःख भी हमने ही सहन किये। हवा बनकर भी उसके दुःख-टायर में बन्द किया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



गया, पंखेसे हिलाया गया आदि भी हमने ही सहन किये। तथा कीड़े मकोड़ोंमें रहकर भी हमने ही दुःख सहन किये।

आजकल लोग जूतोंमें नाल लगवाते हैं, उनमें कितने कीड़े-मकोड़े नहीं मरते, कुचल दिये जाते हैं। वनस्पतिके दुःख कुल्हाड़ीसे काटने आदि के भी हमने ही सहन किये। तिर्यंचके दुखोंको भी नरकके, देवोंकेदुःखों-को भी हमने ही अपने अज्ञानके द्वारा सहन किया। कोई तो चूहेको बन्द कर देते हैं फिर विल्लीको सामने खड़ी कर खोलते हैं वह उसको खा जाती है। हिंसक लोग रस्सीसे उसकी पूंछ बांध लेते हैं और अग्नि पर लटका देते हैं वहीं तड़फ-तड़फ कर उसके प्राण निकल जाते हैं। भैया, ये दुःख भी तो हमने ही उन पर्यायोंको धारण कर सहन किए। मुर्गे मच्छियोंका तो कहना ही क्या? कितने-कितने दुःख सहन करने पड़ते हैं।

वे भी दुःख अज्ञानके कारण हमने ही सहे। और यदि हम अब भी अपने विवेकमें न लगें तो फिर ये दुःख सहन करने पड़ेंगे। और हितकी बात जानेंगे करेंगे तो भी हमें ही आनन्द होगा। कोई उसमें क्या कर देगा। हितमें लगना भी हमारे लगनेसे ही होगा! तब मैं ही तो स्वयं का गुरु हुआ। यदि अन्य गुरु हैं भी तो सूर्यकी तरह। अतः गुरुजनोंने जो हितका उपदेश किया अब मैं उसपर श्रद्धाकर चल सकूं तो चललूं। अन्य उसमें कोई क्या कर देगा! जो कुछ करूंगा मैं स्वयं ही करूंगा। इष्टवियोग या अनिष्टसंयोग होनेके कारण जब यह प्राणी बहुत दुखी हो जाता है तो पड़ौसी आकर बहुत समझाते हैं किन्तु वह चुप नहीं होता क्योंकि दूसरा उसमें परिणमन तो नहीं कर देता! अतः चेतनासे अतिरिक्त मेरा कुछ नहीं! जिस शरीरकी रगरगमें हम समाये हुए हैं जब वही मुझसे भिन्न है, वही मेरे स्वरूपसे अलग है तब वाह्य पदार्थों में कैसे कहा जावे कि ये मेरा है? चेतनाको छोड़कर अन्य मेरा कुछ नहीं जो ज्ञानीजन ऐसा जानते हैं वे अपने आपमें प्रकाश पाते हैं तुष्ट होते हैं! हम तो समस्त पदार्थके साक्षी हैं, उन पदार्थोंसे भिन्न हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सो उन्हें अंगीकार न करें। गवाह उसे कहते हैं जो जैसी बात हो उसको उसी रूपमें कह देवे, गवाह घटनाका होता है, हमारा तुम्हारा नहीं ! यह पदार्थ ऐसा है इसका परिणमन भी ऐसा ही है बस यह जानता रहे। ज्ञाता तो रहे किन्तु यह विचारे कि मेरे चैतन्य भावको छोड़कर मेरा जगतमें अन्य कोई नहीं ! अतः बाह्य पदार्थोंकी उपेक्षा कर अपने में अपने लिए अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊं ! सत्य जो है उसे मान लो उसीकी उपासना करो। प्रत्येक पदार्थका अपना अपना जैसा सहज स्वभाव है वही सत्य है। जिस मकानमें रहते, क्या यह सत्य है कि वह अपना है, नहीं, यह असत्य है सत्य होता तो सदा रहता। ये सब असत्य है, शरीर तक तो असत्य है। कर्मोदयसे मोहमें, ऐसा भाव बन जाता वास्तवमें ऐसा है नहीं ! मेरा तो चेतनाको छोड़कर अन्य कुछ नहीं ! क्रोधादिक भाव सब नाशवान हैं, अन्तरंगके दर्शन हो जानेसे वे सब नष्ट हो जावेंगे क्षण भरमें ?

एक पुरुष बहुत व्यसनी था। स्त्री उसकी बहुत भली थी। औरत ने दुर्व्यसनोंका त्याग करनेके लिए बहुत समझाया किन्तु वह न माना। एक दिन उसकी औरतने उसे एक बटरिया दी और कहा कि ये हम सबके देवता हैं। तुम एक बात मानों इसकी पूजा कर लिया करो और चौबीस घण्टोंके लिए ऐब छोड़ दिया करो। उसके पतिने स्वीकार कर लिया। प्रतिदिन चावल चढ़ावे, घण्टी बजावे, नमस्कार करे और २४ घण्टोंका पाप छोड़ देवे। इस प्रकार करते करते जब कुछ दिन बीत गये तो एक दिन उसने देखा कि बटरियाके ऊपर चढ़कर चूहा चावल खा रहा है। उसने सोचा कि इस बटरियाकी पूजा करना बेकार है क्योंकि इससे बड़ा तो यह चूहा ही है। अब वह प्रति-दिन चूहेपर चावल, चढ़ावे, घण्टी बजावे, नमस्कार करे और २४ घण्टों का पाप छोड़ देवे। कुछ दिन बाद उसके ऊपर बिल्ली झपटी ! उसने सोचा कि इससे बड़ी तो बिल्ली है। अतः वह अब बिल्लीकी पूजा करने लगा। प्रतिदिन चावल चढ़ावे, नमस्कार करे, घण्टी बजावे और २४ घण्टोंके लिए पाप त्याग देवे ! कुछ दिन बाद उसपर कुत्ता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



झपटा। अब वह कुत्तेपर देवताके भाव रख उसे पूजने लगा और सब कार्य उसी प्रकार किये ! एक बार वह कुत्ता रसोईमें घुस गया, औरतने उसको डण्डेसे मार दिया ! उसने सोचा कि इससे बड़ी तो मेरी औरत ही है, मैं व्यर्थ ही भटक रहा हूं। अतः अब वह औरतकी ही पूजा करने लगा ! प्रति दिन चावल चढ़ावे, घण्टी बजावे, नमस्कार करे और २४ घण्टेके लिए पाप छोड़ देवे। जब कुछ दिन इस प्रकार बीत गये। तो एक दिन वह खाना खा रहा था। नमक अधिक हो गया था खानेमें। अतः वह अपनी पत्नीसे बोलाकि आज नमक कैसे अधिक हो गया। औरत भी पूजाके कारण अब बढ़ गयी थी अतः उत्तर भी जोर शोरसे ही दिया कि हाथ ही तो हैं अन्दाजेमें अधिक डल गया होगा। उससे यह सहन न हुआ और अपनी औरतको पीट दिया। फिर उसने सोचा कि यह तो मैं ही बड़ा हूं, बेकार में आज तक इन सबकी पूजा करता रहा। तात्पर्य यह कि उसको छोड़, इसको ग्रहणकर इस प्रकार करते करते स्वयं पर आ गया ! अतः सब लघु हैं तुम्हारे लिए तुमही महान हो ! अन्य कोई नहीं ! अतः अब पर दृष्टि छोड़कर मैं अपनी आत्मामें रमकर अपनेमें अपने लिए अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊं।

निर्वित्तश्चेतनावित्तो निष्कलश्चेतनाकलः।
चेतनान्यन्न मे किञ्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥ १३ ॥

मैं धनरहित हूं, वित्तरहित हूं। धनका दम लोकमें अधिक माना जाता है। प्राण, दम, शक्ति जैसे अर्थमें वित्तका प्रयोग होता है। कुछ पढ़े लिखे तो धनको ग्यारहवां प्राण कहते हैं। वैसे दस प्राण ही होते हैं ! किन्तु धनको भी प्राण मान लिया है, बताइये कितना मोह है इस धनके प्रति प्राणी को ! दुनियादारीमें व्यवहारमें आज धनका बहुत बड़ा महत्त्व है। किन्तु दूसरी दृष्टिसे यदि सोचोगे तो पाओगे कि यही पापका पक्का कारण भी बनता है। अतः वास्तवमें धन तो चेतना है।

चेतना है धन जिसका ऐसा मैं हूं ! मैं शरीररहित हूं। न मैं वित्तरूप हूं न शरीररूप ! वित्त तो प्रकट ही अचेतन वस्तु है ! शरीरमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



चेतनका सम्बन्ध भले ही हो किन्तु वह भी अचेतन ही है ! मेरा धन, शक्ति, बल, सब कुछ चेतना ही है इसमें अन्य कुछ नहीं है ! अतः मैं शरीररहित हूं, कलकल रहित हूं, झगड़ा रहित हूं, उपद्रवरहित हूं ? कल कहते हैं शरीरको । जैसे कहते हैं कि क्या कलकल लगा रखी है । अर्थात् क्या शरीर शरीर लगा रखा है । यह सब जो नृत्य हो रहा है, सब कलकल का ही तो है । अतः मैं कलकल रहित हूं यदि मेरा कल है ही तो वह चेतना है । मेरा स्वरूप सिद्धोंके समान है । वे शरीर रहित हैं, अतः मैं भी शरीररहित हूं ! निज सत्त्वपर दृष्टि की जावे तो ऐसा बोध होगा, और यदि कायपर दृष्टि दी जावे (क्योंकि अस्तिकाय आदिमें भी काय शब्द आया है, तो मेरा शरीर-ज्ञान है) मेरा सर्वस्व ही ज्ञान है । चेतना मेरा लक्षण है ! और यदि अन्य प्रकारसे अपने ऊपर दृष्टि दो कि मैं कितता लम्बा चौड़ा हूं तो ऐसी दृष्टि करनेसे आत्मानुभव नहीं हो सकता ! क्या क्रोधी, मानीका परिणमन देखकर आत्माका लक्षण समझा जा सकता है ? नहीं ! भैय्या, आत्माका लक्षण तो चैतन्यस्वरूप है, चेतना ! अतः आत्माका शरीर है तो ज्ञान है । ज्ञानसे ही आत्माकी समझ पड़ती है ! और ज्ञानरूपमें ही आत्माको समझा जावे तो समझमें आ जावे ! अतः जो सिद्ध है वही मैं हूं ।

वास्तविकता तो यही है कि मनुष्य कषाय बिना आत्मानुभवका पात्र हो सकता है ! सम्यग्दृष्टि ही क्यों न हो वह भी तीव्र कषायके रहने से आत्मानुभवका पात्र नहीं हो सकता । यदि विपदा कुछ है तो इस कषाय की ही विपदा है ! मेरा तो चेतनाके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । आज संसारमें इन शरीर, व धन दोनोंका ही बहुत बड़ा महत्व है ! बहुतसे ऐसे प्राणी होते हैं चाहे कितना ही धन हो पासमें, दान करनेके भाव भी हों किन्तु अपने हाथसे खर्च नहीं कर सकते । स्वयं मुंहसे भी स्पष्ट कह देते हैं कि मुझसे खर्च नहीं हो सकता प्रकृति ही कुछ ऐसी है । भय्या ही, लड़केसे दिला देगा किन्तु अपने हाथसे नहीं दे सकता । कुछ ऐसी वासना हो जाती है कि नहीं दिया जा सकता, यह हुई धनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



तृष्णा, लालसा। और शरीरकी तृष्णा यह है, मैं बहुत अच्छा हूं, मेरा आकार ऐसा है आदि संस्कार बनाये रखना। जैसे धनके लोभमें अपने हाथसे लाभ नहीं होता, उसी प्रकार शरीर रहते हुए भी शरीरका कार्य नहीं किया जा सकता। ये दोनों ही मोह प्रबल हैं। अतः मेरा स्वरूप न तो धन है और न शरीर है।

मेरा सब कुछ चेतना ही है। जिसे आत्मादृष्टि है उसका भाव होता कि सब धनादि मैं परोपकारमें ही लगा दूंगा। यह मन भी विनाशीक है, अतः यही सोचे कि सब जीव सुखी होवें! अन्यथा दूसरोंके प्रति बुरे भाव रखनेसे अगले भवमें मन रहित जन्म होगा! वचन भी दूसरों को कठोर बोलोगे या ऐसे बोलोगे जिससे दूसरोंको दुख हो तो आगे वचन रहित जन्म लेना होगा। यदि इस तनका दुरुपयोग किया परोपकार में न लगाया तो निश्चय ही पृथ्वी वृक्षादि अगले भवमें बनना पड़ेगा। किन्तु ज्ञानी जन यही सोचते हैं कि मेरा तन, मन, धन लग कर जनता प्रसन्न है तो मैं ये सब उनकी सेवामें. लगा दूं! ये तो नष्ट होने वाले हैं अतः जितना भी तन मन धन से दूसरोंका भला हो सके करना चाहिये! ओर यदि कहो कि मोह वालोंमें लगा रहे हैं तो उससे क्या लाभ। अरे सबको समान देखो और सबके प्रति अच्छी भावनाएं सोचों, परोपकार करनेके लिए दूसरोंका दुःख तन, मन, धन बचन से दूर करनेके लिए तत्पर रहो। ऐसा न हो कि कहीं इनका दुरुपयोग करने से अगले भव में इनसे रहित अवस्थाको प्राप्त हो, और रही अपनों में उपकार करनेकी बात, वह तो तुम उनके मोहवश स्वयं बिना किसीके समझाए भी करोगे ही। ज्ञान तो जब है जबकि सबको एक दृष्टि से देखते हुये तन, मन, धन, वचन से जहां तक हो सके दूसरों की सेवा करो! एक पंडितको परोपकारके लिए कुछ रुपया जीव दयाके लिए एक बड़े फन्डके रूप में दिया गया कि परोपकारमें लगा दो बाद में जब हिसाब पूछा गया तो बोले कि मैंने परोपकारमें खर्च कर दिया है, अपने घर वालोंपर जो रुपया इसमें से खर्च किया वह भी तो परोपकार ही है।

सोचो भय्या क्या पर वह उपकार में शामिल है? नहीं। आप देखेंगे तो पायेंगे कि घूमनेके समय पर भी ऐसे सज्जनोंसे वास्ता पड़ता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


रहता है कि भले ही उनके लिए आप या अन्य कोई परिचित नहीं फिर भी नम्र वाणी से बात चीत करेंगे। जहां अवसर होगा परोपकार किये बिना चूकेंगे नहीं। उत्तम सद्बुद्धि रखनेसे अध्यात्म मार्गपर चलनेका पात्र बनता अतः मेरा तो इस संसारमें चेतनाको छोड़ कर अन्य कुछ नहीं तब मैं अन्यपनेकी दृष्टि न लगाकर अर्थात अन्यमें उपयोग न लगाकर अपने में अपने लिए अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊं ! इसको छोड़कर दुनियां में सुखका अन्य कोई उपाय नहीं। दुनियां में जो लेन-देनकी प्रथा हैं। उसमें देने वालेको साहु कहते हैं। तो वह कोई भी जब रुपया नहीं लेने आता है तो उनकी इस प्रकारकी कहावत हो गयी है कि साहु जी ठीक-ठीक बतादें आप देंगे या नहीं। "क्योंकि हांका 'मरे और नाका जीवे।" अर्थात् आपने हमारे मांगने पर हां कर दिया और समय पर न दिया तो हम बेमौत मारे जावेंगे। और यदि स्पष्टमें देसेसे इन्कार कर दिया तो कमसे कम अपना अन्य उपाय तो कर लेवेंगे भरोसे तो न रहेंगे। इसी प्रकार दुनियांके पदार्थोंमें करोगे कि हां यह भी अच्छा इसमें भी अच्छा यदि, तब तो समझो कि मरे। और यदि इस प्रकार सोचोगे, नहीं, पुत्रमें भी सुख नहीं पत्नीमें भी आनन्द नहीं, दुनियां के किसी पदार्थमें भी आनन्द नहीं। आनन्द हैं तो केवल अपने चेतना स्वभाव में ! समझे वह अमर हो गया ! आत्मबल ही एक ऐसा बल है जो कसी हुई अर्थात कषायकी स्थिति में भी अनाकुलताका ज्ञान करा देता है। अन्तर्ज्ञान से उठीं हुई अन्तःपरिणति पूर्ण होती है। जिनके अन्तर्मनमें श्रद्धा है वे बाहर भी वैसे ही दिखायी देते हैं ! किन्तु मिथ्यात्वके कारण ही आज धर्मपर आक्षेप आता है !

धर्म तो सदा सुखका ही हेतु है। धर्मकी ओटमें जो अधर्म चलता है उससे लोक धर्म पर आक्षेप करते हैं। धर्म तो धर्म ही है। जैसे कि एक किसान के तीन बैल थे। दो को तो वह जोतता था एक बैल बन्धा रहता था, जहां वह बंधता था उसके ऊपर एक अलमारी थी, जिसमें वह किसान अपना खाना रखता था। एक बन्दर प्रतिदिन आता अल-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मारी खोलता, खाना खाता और जूठन आदि बैलके मुंहपर मल जाता था ! किसानकी दृष्टि बैलपर ही रहे कि इसी ने खाना खाया यही मेरा सब खाना खा जाता है सो वह खूब उसको पीटे । १०-१५ दिन जब इसी प्रकार बीत गया तो पड़ौसिन ने उस किसानको समझाया कि भाई इसे क्यों पीटता हैं? यह किस प्रकार अलमारी खोल सकता है अलमारी तो इससे ऊपर है । किन्तु वह किसान बोला कि मैं यह सब नहीं जानता । मुंह तो इसी का पुता हुआ है फिर सन्देह कैसा ? काफी उनके समझानेपर छुपकर देखनेके लिए वह तैयार हो गया । प्रतिदिन की तरह वह बन्दर आया, उसने अलमारी खोली खाना खाया और झूठन बैलके मुंहपर पोत दी! उसी प्रकार वृषभ तो हुआ धर्म और बन्दर हुआ पाप । सो भैया खोटी करतूत तो पाप करता है, अपयश धर्मका होता है । कितनी ही बड़ीसे बड़ी विपत्ति क्यों न हो, ज्ञानी तो यह विचारता है कि मैं तो चैतन्यस्वरूप हूं, फिर कहाँ है विपत्ति, कहाँ है दुःख । इस विचार के बाद विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं । ज्ञानी सम्पदा, विपदा, सुख-दुखको एक ही दृष्टिसे देखता है । मैं भी ज्ञान स्वरूप हूं सो अपने चैतन्य स्वभाव को पहिचान कर अपनेमें अपने लिए अपने आप अपने द्वारा सुखी होऊं ।

यह बात केवल शुद्ध निज चैतन्य स्वरूपकी दृष्टि द्वारा प्राप्त हो सकती है । एतदर्थ हम लोग अन्य सब बातोंकी असारताका निर्णय कर अब अपनी ओर आयें । भैया यदि तुम इसका निर्णय करना चाहते हो तो यह तो निश्चय है कि ये धन, मित्र, पुत्र, पत्नी आदि मेरी शान्तिके कारण नहीं हैं । इतना ज्ञान दृढ़तापूर्वक करके इन सबकी उपेक्षा करो और यही सोचो कि ये वाह्य पदार्थ मेरे ज्ञानमें न आवे ! मेरा ज्ञान निर्मल रहे । अतः उसको निर्मल रखनेके लिये अपने अन्दर इन वाह्य पदार्थोंकी कल्पना न करो । उधर अपना उपयोग लगने ही मत दो ! वाह्य पदार्थोंमें लगकर सुखका कोई रास्ता नहीं मिलेगा । विपदा ही विपदायें मिलेगी । वाह्य पदार्थोंमें जबतक राग दृष्टि रहेगी तब तक शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती और जहां इनकी उपेक्षा की,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



इनके प्रति मोह न रखा, इनमें उपयोग न लगने दिया तो अशान्ति वहां रह ही नहीं सकती। अतः भैया ! यदि सुखी होंना चाहते हो, वास्तविक आनन्द प्राप्त करना चाहते हो तो इन वाह्य पदार्थोंकी बुद्धि न रखो। संसारी जीवोंमें ये छटनी मत करो कि ये मेरा है, यह पराया है। सबपर समान भाव रखो। सबके प्रति यही भावना भावो कि सब जीव सुखी होवें। सबके प्रति क्षमा भाव रखो। तन, मन, धन, वचनमें जितना परोपकार हो सके, उपयोग करो। अपने आश्रित व्यक्तियोंमें ही नहीं, जो अपरिचित हैं उनके प्रति भी मधुर वाणीं बोलो, नम्रतासे पेश आवो, उनके भलेकी ही सोचो, अपने परिश्रम करनेमें किसी को फायदा पहुंच जावे तो सामर्थ्यके अनुसार उसका उपकार करो ! आत्मा तो अमर है। शरीरसे भैया तुमने कुछ परिश्रम भी कर यदि दूसरेकी सेवा सुश्रुषा कर भी दी तो तुम्हारा क्या घट जावेगा। तुम तो शाश्वत हो !धन देकर यदि किसीकी सहायता हो तो चूको मत ! आगे भी इससे जिस प्रकार पूर्व भवके पुण्य कर्म से इस जन्ममें प्राप्त किया, प्राप्त किया जा सकना फिरभी इसकी चाह नहीं करो, ऐसा हो जाता है सो होगा। हां धनका दुरुपयोग करना बुरा है। या तो सदुपयोग करो या सब त्याग कर अपनी उपासनामें लग जाओ।

दुरुपयोग करनेसे इस लोकमें भी विपदा है और आगे भी दुर्गति ही है ! यदि सत्य उपाय बन गया, तो उसे परम शान्ति प्राप्त होगी ! परम विश्राम होगा, एवं अपने सहज स्वाभावके दर्शनभी कभी हो जावेंगे। इसका आनन्द सब सुखोंकी अपेक्षा विलक्षण होगा! तब वह उस स्थितिको छोड़ना नहीं चाहेग। और यही सोचेगा कि मैं इसे किस प्रकार बनाये रखूं ? यह तो वही स्थिति है जिसे मैं आज तक खोजता रहा, जिसके दर्शन न कर नाना गतियोंमें घूमता रहा किन्तु अब मैं अपने उद्देश्यको पा गया हूं, इसी में मेरा कल्याण है ! ऐसा करनेपर पाप स्वयं ही छूट जावेंगे, और पापोंके छूटनेका नाम ही तो धर्म है। अतः भैय्या, अपने आप को पहिचानों फिर कोई सता नहीं सकता ! समझ लो फिर बेड़ा पार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हो गया। अपने आचरणों को ठीक रखनेसे ही मुक्तिके मार्गपर जीव लग सकता हैं। अतः व्यसनोंका त्यागकर अपनी आत्माके स्वयंसिद्ध ज्ञानस्वरूपका श्रद्धान कर अपने कल्याणमें लगो। यही तो अपना धर्म है।

निष्कीर्तिश्चेतनाकीर्ति–र्निष्कृतिश्चेतनाकृतिः।
चेतनान्यत्र मे किञ्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥ १-१४ ॥

यह जीव कीर्ति चाहता है। प्रत्येक दुनियावी चाहे वह किसीभी दशा में क्यों न हो किन्तु वह यशकी कामना मनमें रखता है कि सब मुझे अच्छा कहें। भैय्या ! यदि शरीरकी कीर्ति चाहते हो तो यह तो कठोर सत्य है कि यह साथ नहीं देगा, यह नष्ट होनेवाली चीज है, तब इसकी क्या कीर्ति, जो वस्तु स्वयं ही नष्ट होनेवाली है उसकी कीर्ति कैसी ? और जब आत्माको पहिचाना ही नहीं तब आत्माकी कैसी कीर्ति ? अतः मैं चैतन्यस्वरूप हूं ! मैं कीर्तिरहित हूं ! मेरा स्वरूप कीर्तिरहित है ! मेरी कीर्ति यदि है तो वह चेतना ही है ! आत्माके स्वभावका कार्य हाथ पैर चलाना आदि नहीं, इसका काम तो जानना, देखना, श्रद्धान करना है क्योंकि यह तो मात्र चैतन्यस्वरूप है। यह सब जो क्रिया हो रही है वह सब पुद्गलकी हो रही है। यह पैसा, धन, वैभव, ऐश्वर्य, पोजीशन, पिता, पुत्र, स्त्री, बन्धु, बन्धनादि का जो मोह लगा हुआ है हम इसीमें पिले जारहे हैं, आत्मचिन्तन नहीं करते। हम जिनको पराया समझते हैं, जिनसे हमारा परिचय नहीं, जो अपरिचित हैं उनसे हमें क्लेश नहीं पहुंचता किन्तु उन मोहियोंसे जिनसे हम मोह बढ़ारहे हैं, जिनको हम अपना हितैषी मान रहे हैं उनके कारण ही क्लेश होता है। यदि गैर आदमी हमारी आज्ञा नहीं मानता, यदि हमें उल्टा-सीधा कह देता है तो हमें क्लेश नहीं पहुंचता किन्तु जिनसे हम मोह बढ़ाये हुए हैं वे यदि आज्ञा न मानें या विपरीत बात कह देवें तो क्लेश पहुंचता है फिर भी मोह उन्हें छातीसे लगाये फिरता है। क्या किया जा सकता है जब मैं इतना भी नहीं समझता कि जिससे तू मोह कर रहा है वही तुझे अनिष्ट पहुंचाने वाला है। सबके प्रति समताभाव धारणकर सुखी होनेकी भावना न करके योंही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



दुःखको ही सुख मानकर भटक रहा है। सुखका उपाय यदि है तो वह है ज्ञान व वैराग्य। सच्चा ज्ञान व परपदार्थोंमें उपेक्षाभाव ही सुख प्राप्त करा सकता है, अन्य नहीं और सब ये बाह्यपदार्थ तो संसार समुद्रमें भटकानेवाले ही हैं, पार लगानेवाले नहीं। इस जीवका पर पदार्थोंमें कुछ भी शरण नहीं है। यदि शरण है तो वह अपना ज्ञान व परपदार्थोंसे उदासीनता ही है। जितना ज्ञानविकास करोगे उतना ही सुखी होवोगे। परपदार्थोंमें मोहका नाम ही विपदा है। जिसने अपने आपको पा लिया वही अन्तरात्मा है और वही सुखी है।

सुखका उपाय सत्संग, स्वाध्याय, भगवद्भक्ति है। सबको समान दृष्टिसे देखता हुआ उन्हें अपनेसे गैर समझो। हम जो भी कर रहे हैं वह जिनसे मोह है उनके प्रति कर रहे हैं, किन्तु सब कुछ समर्पण करना चाहिये ज्ञान व वैराग्यके हेतु। अन्यायसे, अनीतिसे, झूठ बोलकर तात्पर्य यह जिस उपायसे हो उस उपायसे हम आजीविका कमा रहे हैं उनके लिये जो हमारे कुटुम्बके हैं, जिनको हम अपना समझते हैं किन्तु वे ही विपदा व पतनके कारण बनते हैं। वाल्मीकिजी का काम यही था कि वे आते जाते मुसाफिरोंको लूटते थे, उनका सब माल छीन लेते थे। एक बार एक साधु जा रहा था उसी मार्गसे, वाल्मीकिजी ने ललकार कर कहा कि हे मुसाफिर! जो भी तेरे पास है वह सब निकाल कर यहाँ रखदे नहीं तो मैं तुझे मार डालूंगा! साधु जी के पास जो भी लोटा कम्बल आदि था सब देकर बोले कि भैया, इनको या तो कहीं रखलो या मुझपर विश्वास कर एक काम करो कि अपने घर यह पूछकर आओ कि जो मैं यह पापकी कमाई कर रहा हूं, उसमें तुम भी साथ दोगे या नही? पाप तुम भी बांट लोगे? वाल्मीकिजी अपने घर जाकर अपने माँ बाप भाई बहिन पत्नी आदि सबसे पूछते हैं कि मैं जो यह पापकी कमाई रातदिन परिश्रमपूर्वक कर रहा हूं इसमें तुम लोग भी साथ दोगे या नहीं? भैया, पापका नाम ही बुरा होता है कौन उसमें हिस्सा बाँटनेके लिए तैयार होगा? सबसे इन्कारी की बात सुनकर वापिस आया वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



और उसी दिनसे ज्ञानकी साधनामें लग गया। वैराग्य प्राप्त हो गया यही जानकर कि मैं जिनके लिये यह कृत्य कर रहा हूं वे कोई साथ नहीं देंगे हिस्सा नहीं बाटेंगे तब साधुजी को सब वापिस कर बालमीकिजी आत्मप्रगति करनेके हेतु साधु बन गये। अब बताइये कौन है अपना इस आत्माके सिवाय, चैतन्य स्वरूपके अतिरिक्त? अतः हे भाइयो सबको चैतन्य स्वरूप देखो व सोचो कि सब जीव दुनियाके सुखी होवें, कोई दुखी न रहे। और मुझसे जो भी तन, मन, धन वचन द्वारा उपकार हो सके उसे करनेमें मैं न चूकूं! इस पर बहुत विचारो कि हमारा किसीके प्रति कभी दुर्व्यवहार न हो! यह ध्यान रखो कि जो हमको प्रतिकूल-प्रतीत होगा, हमारी प्रकृतिसे विरुद्ध हमको होगा उससे दूसरों को भी तो कष्ट पहुच सकता हैं, सो जिन बातोंसे हमें अच्छा प्रतीत नहीं होता तो दूसरोंके प्रति वह दुर्व्यवहार न करें।

हमारे शरीरमें यदि काँटा लग जावे या सुई चुभ जावे तो कितना दुःख पहुंचता हैं फिर आजकल जो ये मांस, मच्छीको खाद्य बनाया जा रहा है, भोजन बनाया जा रहा है, उसमें तो मुर्गा, बकरा आदिको काटा जाता है, उनको कितना दुख होता है उनको कितनी छटपट लगती होगी, और वही कुछ लोगोंकी स्वादिष्ट सामग्री बनती है, उनकी तो जरासी रसनाकी तृप्ति और उसका प्राणान्त और वह भी वेदनापूर्वक। हायरे मानव! कितना पतन हो गया है, क्यों भूल रहा है कि तेरा यह कर्त्तव्य नहीं, इसमें सुख नहीं विपदा है, जन्म मरण के चक्कर हैं। बड़े अफसोस की बात है कि यदि मानव जीवन पाकर भी तपस्या न की, तो अवश्य ही हम बुरे मार्गपर हैं। कितनी दुर्लभतासे मिला है ये मानव जीवन और इसको यों ही गवाँ दिया तो पछताना पड़गा। मनुष्य, देव, तिर्यश्च और नरक इन चारों गतियोंमें यदि उत्तम गति हैं तो वह है मानव पर्याय, मानव गति और इसे पाकर भी यों ही गवाँ दोगे तो समझो कि तुमने अप्राप्त वस्तुको पाकर मूर्खतावश उसकी कीमत न समझी, अतः भैय्या इसकी कीमत समझो और समझ बूझकर, दृढ़ विश्वास कर आत्मकल्याण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



के मार्गपर लगो। मन, वचन तन और धनसे जितना हो सके परोपकार करो, नहीं तो क्या है जैसे सब जीव जीते हैं वैसे ही हमारा भी जीवन, वैसे ही मरण इनके बीचका जीना चलता रहेगा। फिर चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण ! अतः कीर्ति व कृतिको असार जान कर परमार्थिक ज्ञानस्वरूपमें उपयोग देकर सत्य कीर्ति व कृति प्राप्त करो।

जीविताशा प्रतिष्ठाशा विषयाशा जनैषणा।
अभिमुग्धो विनष्टोहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥ १-१५ ॥

ज्ञानवान पदार्थ शरीरसे जुदा है ! मैं तो आनन्दस्वरूप शान्तिस्वरूप हूं और इसीकी अभिलाषामें लगा हुआ भी हूं ! केवल यही लक्ष्य है मेरा कि मैं शान्तिवान बनूं, अन्यकी अपेक्षा नहीं ? अमुक कुलका हूं, अमुक जातिका हूं, अमुक धर्मका हूं आदि बातोंसे प्रयोजन नहीं। मैं जो कुछ भी हूं, शान्तिकी खोज करने वाला हूं ! ऐसी प्रत्येक प्राणी की इच्छा है। किन्तु ज्ञान न होनेके कारण व्यवहारसे वाह्य पदार्थों में आकृष्ट हो, विषयवासनामें आकृष्ट हो उसीमें शान्तिकी कामना करता है। लोगोंको आकृष्ट करनेके लिये वाह्य पदार्थोंमें ही उपयोग लगाये रहता है किन्तु शान्ति प्राप्त नहीं होती ! मैं तो शरीरसे भिन्न निराला ज्ञानपुञ्ज हूं ! शान्तिस्वरूप हूं, बस मुझे यही चाहिये, अन्य कुछ नहीं। वाह्य पदार्थोंसे जब उपेक्षा होगी तब समझो कि हम अपनी अमूल्य निधिको प्राप्त करनेके पात्र हैं। जिस पदार्थका जो स्वभाव है उस स्वभावको ही धर्म कहते हैं ! अपने को धर्मरूप मानना सो धर्मको ही पाना है ! आत्माका स्वभाव सो आत्माका धर्म ! अपने स्वरूपमें ही उसे मानना सो धर्मका पालन है।

धर्मका पालन वाह्यक्रियाओंसे न होकर ज्ञान भावनासे होगा ! अन्य कोई उपाय नहीं धर्मके पालनका। धर्मपालन अपनेसे ही किया जाता है ! तन, मन, धन, वचनके सदुपयोगसे जितना भी हो सके ! स्वपरोपकार करे ! जो धर्म करने वाली आत्मा है वह शरीरमें ही तो है ! ज्ञानीजन तन, मन, धन, वचनसे जैसे भी हो सके स्वोपकार व परोपकारमें ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



लगा रहता है तथा सुखी भी वही है ! इनके सदुपयोगमें ज्ञानी जीव पथ-भ्रष्ट नहीं होता! और इनका सदुपयोग न करनेके हीं कारण ये सब विवाद लगे हुए हैं। इनके कारण ही नाना भेद बन गये ! परमार्थ दृष्टिसे तो ज्ञानी जीव सबके प्रति उपेक्षा भाव रख धर्मके स्वरूपको समझते हैं, अन्तर्दृष्टि बनाकर धर्मका पालन करते हैं। यह स्वभाव अनादिसे अनन्त तक एकसा रहता है। शाश्वत जो सत् है वही द्रव्य कहलाता है। क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि मेरा स्वभाव नहीं। इनको धर्म मानना अधर्मका पालन है। मेरा स्वरूप तो चैतन्य है, इसका कार्य ज्ञाता द्रष्टा रहना है। वाह्य-पदार्थ व परभावका मैं कर्ता नहीं। यही दृष्टि धर्मका पालन है। दुर्लभ इस मानव जीवनको पाकर संयम ज्ञान बढ़ाना जितना हो सके उतना ही कल्याण है। जीवन प्यारा है तो धर्मपालनसे जितना हो सके उतना भला कर लेना चाहिये जीवन प्यारा है तो वह धर्म पालनके लिए है, खाने पीने के लिए नहीं ! भैया ! जीनेके लिए खावो। खानेके लिए जीना मानव जीवन नहीं ! जीवन है धर्म पालनके लिए ! सबसे बड़ा धर्मपालन तो यही है कि अविकार आत्मस्वरूपको देखो, सबपर समता भाव रखो, क्रोधादि कषाय मत करो ! कषाय करना क्या इस जीवका स्वभाव है ? नहीं ! हम कहते हैं कि किसीसे कहा जाय कि तुम एक घण्टे तक क्रोधी बन कर रहो तो क्या वह रह सकता है। कुछ समय पश्चात् ही वह अपने वास्तविक स्वरूपमें आना चाहेगा ! जैसे जलको आगपर रख दो गर्म होगा, बादमें वह अपने वास्तविक स्वरूपमें नीचे रखते ही आने लगेगा ! इसी प्रकार मान भी। मान करना, घमण्ड करना क्या जीवका स्वभाव है ? नहीं। न माया, छल कपट ही जीवका स्वभाव है और न लोभ ही जीवका स्वभाव है ! इनके रहते हुए आत्मकल्याण नहीं हो सकता, अपने स्वरूपका दर्शन नहीं हो सकता। अपने स्वभावको पहिचानना है, अपने आपका दर्शन पाना है तो भैय्या ज्ञानके स्वरूपको ही जानने लगो, समता रसका स्वाद लो, सब जीवों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


पर समता भाव रखो। इन संसारी प्राणियोंमें छटनी मत करो, कि ये मेरा भाई है, यह मेरा मित्र है, मेरी पत्नी है आदि। राग भाव ही विपदाका कारण है।

जितना भी यह नाटक हो रहा है सब उपाधिका है। कषायमें कषाय मिल गयी तो मित्रता और विपरीत अवस्थामें दुश्मनी। छोटे छोटे बच्चोंको ही ले लो कि जिस खेलको एक बच्चा जानता है यदि उसीको दूसरा भी जानता है तो तुरन्त पक्के मित्र बन जावेंगे, अन्यथा दुश्मनी कर लेंगे, लड़ाई हो जावेगी। जो कुछ भी आज हो रहा है किसीसे दुश्मनी किसीसे मित्रतायें यह सब कषायोंका ही प्रताप है, उपाधिका ही नाटक है। अतः हे भाइयो! इस सबको असार जान अपने स्वरूपकी ओर आवो। उसीमें तुम्हारा हित होगा, और अन्य जो तू पर पदार्थमें रागद्वेषकी बुद्धि कर रहा है वह सब विपदाको देने वाली है, संसारका भ्रमण कराने वाली है। आत्माका आनन्द इन बाह्य पदार्थोंमें नहीं। ये सब वैभव, धन, बड़े-बड़े महल, पोजीशन आत्माका स्वभाव नहीं किन्तु इनमें पड़कर अपनी पर्याय बिगाड़ना है, विकल्प करनेसे जग जाल नहीं छूटेगा। देख लो जितने भी बड़े-बड़े सेठ साहूकार होंगे वे भी प्रायः दुखी होंगे क्योंकि तृष्णा जिनकी अधिक रहती है, वे दुखी होते रहते हैं। ये सब वैभव जो तुम्हें आज प्राप्त है यह पुण्यकर्मकी कमाई है। पूर्वजन्ममें पुण्य किया था उसीका फल है जो आज प्राप्त है। और यदि इस जन्ममें यह सब पाकर परोपकारमें न लगाया बादमें, धनके बीत जानेपर, शरीर ढल जानेपर पश्चात्ताप होगा, क्लेश होगा कि इनके रहते हुए मैं दान न कर सका, दूसरोंका उपकार न कर सका? यदि धन दानमें देता तो कमसे कम उसका सदुपयोग तो हो जाता किन्तु धनके चोरी हो जाने पर, आग लग जाने पर, सन्तान बुरे कर्मोंमें फंसी हुई होनेके कारण पछताता है कि मैं समय रहते न चेता! अतः ये सब तो नष्ट होने वाली चीजें हैं! इनका जितना भी परोपकारमें उपयोग करोगे उतना ही सुख उतना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



धनादि स्वयं प्राप्त होता जावेगा। कोई यदि ये सोचे कि परिश्रम करनेसे शरीर घटता है सो बात नहीं, बल्कि और शक्ति ही प्राप्त होती है। यही लोकधर्मका पालन है। ऐसा करनेपर उसे लौकिक संतोष प्राप्त होगा।

मुमुक्षुको विकल्पजालोंमें न पड़ना चाहिये। मेरी प्रतिष्ठा हो, मान हो, आदि आशाएं ही विपदा हैं! इन सबमें उपेक्षाभाव रखो! विषयोंकी आशा करना भी निर्मूल है, ये यदि प्राप्त हो गये तो भी शान्ति न मिलेगी और यदि न मिले तो भी अशान्ति ही है! इन सबमें बरबादीके सिवाय हाथ कुछ न लगेगा! मैं यह सब कुछ नहीं, मैं तो ज्योतिपुञ्ज हूं इस विचारके रहनेसे विपदा सब नष्ट हो जावेंगी! जो अपनेको इस प्रकार मानता है वह सबको चैतन्य स्वभाव वाला ही जानता है! सबकी विनय करता है! इस प्रकार स्वयं भी सुखी होता है और दूसरोंको भी सुख पहुंचाता है। और इससे विपरीत दशामें तो दुःख ही दुःख है। इन बाह्य पदार्थोंसे क्या सुख है? यदि सुख मिलेगा तो वह ज्ञानसे ही मिलेगा! अतः सबपर समता भाव रखूं और सब कुछ समता दृष्टिसे ही देखूं। अपने आपको पहिचानना है, प्रभुके दर्शन करना है तो, अपना आचार विचार, व ज्ञान निर्मल बनाये रहो, बाह्य पदार्थोंमें वैराग्यकी भावना रखो! अन्यायका त्याग, संयमसे रहना ये सारी बातें ज्ञान व चरित्रको निर्मल बनाती हैं। आशा कुछ रखो तो अपने निर्मल परिणामोंसे रखो। अन्य आशायें रखना केवल विपदामें गिरना है। यही प्रयत्न व यही उपयोग हो कि मैं सर्व आशाओंको त्याग कर नैराश्यकी आशा कर अपनेमें आप सुखी होऊं।

भवेऽप्यस्मिन् मुहुर्नाना दुःखं प्रापं क्व रक्षकः।
को भूतः कस्य भूतोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्.॥१-१६॥

मैंने इस भवमें भी तो नानाप्रकार के दुःख पाये, उनमें बताओ कौन रक्षक हुआ, भैय्या किसीसे रक्षाकी आशा मत करो, रक्षक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कोई हो ही नहीं सकता, क्योंकि हमारी परिणति कोई अन्य बदल नहीं सकता। यदि बदलेगी भी तो स्वयं की स्वयंमें हुई परिणतिसे ही बदल सकती है! देखो जन्मसे ही विचार कर लो जब बच्चा था तब अपनीं इच्छा व्यक्त न कर सका था तबभी आत्मा पूर्ण ही था किन्तु इन्द्रियोंके कारण बोल नहीं सका! बचपनमें भी क्लेश हुआ है कुछ इच्छाके अनुकूल प्राप्त न हुआ कि झट रो दिया अब बताओ, कौन रक्षक हुआ इसका, कुछ बड़ा हुआ तो स्कूल भेजा गया। खेलकूदमें मन लगता था उसे छुटाकर स्कूलमें भेजा तो वह भी उसके अनुकूल न हुआ अतः दुःखी हुआ तब भी इसका कोई रक्षक नहीं हुआ। पढ़नेमें रत भी हुआ, पढ़नेको चित्त भी लगाया तो अपने से अधिक दूसरे के नम्बर देखकर दुखी हुआ। विफल होनेपर तो कई छात्र क्लेशकी अधिकताके कारण आत्महत्या तक कर लेते हैं। जवानीमें शादीका दुःख, सगाई शादीके प्रति उत्सुकता, उसमें देरी होनेसे क्लेश पाया। कहींसे शादी न हुई तब दुःख पाया। यदि हुई तो ब्रह्मचर्यका खण्डन हुआ फिर बच्चे हो गये तो ऐसा दबा कि फिर वह ज्ञानकी बात सोच नहीं सकता। कहीं लड़की उत्पन्न हो गयी तो फिर दुःखोंका कहना ही क्या है? ओर जिसकी दो चार लड़कियाँ हो जाँय तो वह तो शुरूसे आखीर तक उसी ऊहापोहमें लगा रहता है, कहाँ कहां की चिन्ता करना पड़ती। यदि लड़का हो गया तो दुःख कैसे? कुपुत्र हुआ तब तो दुःख है ही, सुपुत्र हो तब भी दुःख ही दुःख है क्योंकि उसके लिए यही चिन्ता करता रहता है कि इसके लिए ऐसा कुछ प्रबन्ध कर जाऊं ताकि यह दुःखी न हो, उसके मोह में दुःखी होता रहता है। केवल ज्ञानवान ही दुःख नहीं मानता वह सब परिस्थितियोंमें सुखी रहता है। क्योंकि उसमें सच्चा ज्ञान है, अतः अपने ज्ञानबलके कारण ही आत्मा आनन्द पाता है। फिर यह भी तो सोचो कि मैं ही किसका रक्षक हुआ। भैया! यह सब भ्रम है किसीका किसी से प्रेम है तो दुःख और बैर है तो दुःख। अन्य पदार्थोंकी ओर उपयोग गया कि दुःख ही दुःख है और अपनी ओर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



गया अपने स्वरूप की ओर ध्यान दिया तो सुख ही सुख है। सबसे बड़ी विपदा तो संकल्प-विकल्प, अज्ञान विषयवासना इनकी है। यदि किसीने कुछ कह दिया तो क्या हो गया, उसका उसमें परिणयन हुआ मुझे क्या? किसकी ताकत है कि मुझे दुखी करदे और किसकी ताकत है कि मुझे सुखी करदे। खुदका ही परिणमन दुःख पहुंचाता है और खुदका ही परिणमन सुख पहुंचाता है। वे विरले ही ज्ञानी जीव हुआ करते हैं जो समता परिणाम रख सोचते हैं कि मेरा कौन? और पराया कौन? जिसे हम अपना मानते है वही तो दुखका विपदाका कारण बनता है अन्य पराये क्या बनेंगे, जबकि उनमें उपेक्षाभाव है। तो सबसे अधिक विपदा तो इनसे ही है, जिन्हें हम अपना मान-मान कर दुखी हो रहे हैं।

वास्तवमें देखा जावे तो ये ही मेरी आत्माका स्वरूप न जानने देने वाले हैं। ये ही बाधक हैं। वे मेरे हैं नहीं, उन्हें मानना भ्रम है, और यदि कुछ हैं तो दुःखके देनेवाले हैं। उन्हें प्रेमसे देखो तो दुःख और विरोधसे देखो तो दुःख। सुख प्राप्त हो सकता है तो ज्ञान-बलसे ही हो सकता है। जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ दुःख ही दुःख है। ज्ञानी तो ज्ञाता, द्रष्टा है। ज्ञानबलसे जैसे जैसे वस्तुका स्वतन्त्र स्वरूप समाता जाता है वैसे वैसे ही विषयोंसे राग हटता जाता है। अतः सुखके लिए जो अनेक प्रयत्न करते हैं यदि हम उनकी अपेक्षा यह प्रयत्न करें कि जो वस्तुका स्वरूप है वह हमारी दृष्टिमें अधिकसे अधिक आवे तो अधिक सुख अथवा शुद्ध आनन्द मिलेगा। हम स्वयं ज्ञानवान हैं, पूर्ण हैं। कहां तो मेरा चैतन्यस्वरूप और कहां विषयवासनाओंमें फंसा हुआ मैं। जैसे गीदड़ोंमें फंसा हुआ शेर अपनेको गीदड़ मानता है किन्तु उसे यदि यह ज्ञान हो जावे कि मैं शेर हूं तो फिर देखो। वही दशा मेरी भी है। मेरा तो स्वरूप भगवान जैसा है। भगवानके दर्शन करनेका यही तो प्रयोजन है और है क्या? यदि इच्छा रखकर दर्शन किये कि भगवान हमें सुख दुख देने वाले हैं, इनकी पूजा करें तो क्यासुख दे देवेंगे। तो इन परिणामोंमें निर्मलता कहाँ, ये तो मिथ्यात्व हैं, अज्ञान हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



निर्मलता तो वहाँ है जहाँ आत्माका सच्चिदानन्द स्वरूप सोचा जा रहा है। मेरा स्वरूप तो केवल ज्योतिपुंज है, चैतन्यमात्र है ऐसी उपासना कर जो यह ख्याब लाता हैं कि मेराभी वही स्वरूप है जो तुम्हारा है, वह परमात्मतत्त्वका भक्त है, परमात्मस्वरूपका दर्शक है। क्योंकि द्रव्यत्व वही है किन्तु व्यक्त नहीं है। जैसे दो बर्तन नये लिये दोनों एक जैसे हैं, उनमेंसे एक चूल्हेपर चढ़ा दिया तो वह काला है तो जो उनमें भेद आ गया बस वही भेद प्रभुमें और मुझमें है। स्वभावतो एकही है किन्तु मुझमें तो कलंक लगा हुआ हैऔर प्रभु उसी प्रकार है। हम पर पदार्थोंमें लगे हुए हैं और वे इन सबसे उपेक्षाभाव रखते हैं, जानते सब कुछ हैं किन्तु जानते हुए भी उपेक्षाभाव रखते हैं। किसीके मर जाने पर वह प्राणी करुण विलाप करता है और कहता है कि हाय, मैं तो मर गया, मेरा तो घर ही उजड़ गया, मेरा दुनियाँमें कोई न रहा। हे आत्मन् तेरा स्वरूप तो अरहन्त सिद्धों वाला है। सोचो ! कहाँ तो यह महत्ता और कहाँ ये विचार कि मैं लुट गया। हे भैया तेरा लुट क्या गया ! तेरा स्वभाव तो तेरे अन्दर है जो कुछ है वह स्वयंमे है, अन्तदृरिटसे मन, बचन, कायकी प्रवृत्तिको एकाग्र करके देख तो सही। किसी कामको करेंगे तो वह होगा और यदि बात ही करते रहेंगे तो क्या होगा। घरमें यदि कूड़ा इकट्ठा हो जावे तो क्या वह बातें बनाने से दूर हो जावेगा ? वह कार्य तो खुदके श्रम करनेसे ही होगा अतः हे आत्मन् तेरे अन्दर आनन्द तो पूरा भरा हुआ है, आनन्दसे लबालब है किन्तु अन्तर्दृष्टिसे उपयोग करे तभी तो पान कर सकेगा। ऐसा भाव जगावे तो उसका वेड़ा पार है अन्यथा भटकते रहना होगा इन्हीं चौरासी लाख योनियोंमें। मैंने इसी भवमें नाना दुःख सहन किये बताओ कौन हुआ मेरा रक्षक और किसका मैं रक्षक हुआ। मैं तो सबसे भिन्न चैतन्य स्वरूप मात्र हूं। इसका जितना भी दृढ़ विश्वास होगा, दृढ़-श्रद्धान होगा उतना ही सुख पावेगा यह जीव। सब प्राणी अलग अलग हैं, अपने-अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें परिणमन करते हैं ! एक जीवका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



दूसरे पदार्थोंसे अत्यन्ताभाव है। जो त्रिकालमें भी मेरा कुछ नहीं हो सकता उसमें अपनेपनकी बुद्धि करना विपरीत मार्गमें लगना है। और जो उस विपरीत मार्गपर चलेगा वह विपरीत अवस्थाको प्राप्त होगा, दुख उठायेगा नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव इन चारों गतियोंमें भ्रमण करते हुए दुख सहन करेगा। मैं तो सब जीवोंसे, इस शरीरसे रागद्वेपके भावोंसे इन सबसे न्यारा हूं, मैं तो चैतन्यशक्तिमात्र हूं! यह अन्यत्र कहां प्राप्त होगा यह तो यह यहीं ही है। मेरा यह सर्वस्व है।

जो इसकी भावना करेगा सो सुखी होगा। अतः मैं इसे प्राप्त कर आत्माका कल्याण करता हुआ अपनेमें अपने लिए, अपने द्वारा, अपने-आप सुखी होऊं।

दुस्त्याज्या चेद्ररतिस्त्यक्ता मृतत्यक्तकुटुम्बिनाम्।
स्वातन्त्र्यं स्यान्नि किं स्वस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं।१-१७।।

जो आज नहीं हैं अर्थात् मर चुके हैं या अलग हो गये हैं। उनमें मेरा सबसे अधिक स्नेह था, मोह था, अब जब वही छूट गया तो इन छोटे-छोटे विषयोंमें क्या राग करना। जिस कुटुम्वमें जिससे भी सबसे अधिक मोह होता है फिर एक दो साल बीत जानेपर याद भी नहीं करते, तब कहां गया वह मोह? फिर जब तूने सबसे अधिक मोह को ही ममताको ही छोड़ दिया फिर इन अन्य वाह्य पदार्थोंकी ओर क्यों आकृष्ट होता है, आखिर छूटेंगे तो ये सब ही एक न एक दिन, तब क्यों इनमें राग बढ़ाकर दुखी होता जा रहा है। ऐसी प्रकृति क्यों बना रखी है कि एकसे छूटकर दूसरेमें मोह करने लगे। जैसे तुझे सबसे अधिक स्नेह जिस किसीमें था, उसकी मृत्यु हो गयी तब कहां गये वे सुख विलास, कहाँ गया वह मोह, ममता। जब तुझसे इतना बड़ा ही मोह बीत गया-छूट गया तव इन वाह्य पदार्थोंमें फिरसे क्यों राग द्वेष बुद्धि करता है, छूट तो ये भी जावेंगे एक न एक दिन। फिर इनमें पड़कर क्यों स्वतन्त्रता खो रहे हो। क्यों न इनके प्रति मोह-ममताकी द्वेषकी बुद्धिको नष्ट करूं। मरनेपर, किसीके बीत जानेपर सोचता है कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मेरा शरण कोई न रहा। मैं लुट गया। हे प्राणी! चेत और विचार कर तो देख तेरा क्या लुट गया, तेरी शरण है कौन। तेरा सब कुछ तेरे में ही हैं। तेरी शरण भी तू ही हैं। उपादान ज्ञान बिगड़ा हुआ है अतः एक बातके, एक पदार्थके बीतनेपर तू दूसरेके प्रति मोह करता है। व्यर्थमें स्वतन्त्रता खोता है। मामूली बातोंमें अपनी स्वाधीनता खोता है। अब अपना ज्ञान इतना निर्मल बनाओ ताकि बाह्य पदार्थोंमें रागबुद्धि ही न जावे। जब अपनी योग्यता ठीक नहीं है तब प्रत्येक स्थान पर दुख ही प्राप्त होगा। अपनी आत्माका ध्यान करो और सुखी होओ। सबसे बड़ा सुख स्वतन्त्रता है। इसका यह मतलब नहीं कि उद्दण्ड हो जावो। दूसरोंके साथ उद्दण्डतासे पेश आवो। कर्मकी आधीनता न रहे उसे स्वतन्त्रता कहते हैं। व्यवहारमें भलेही स्वच्छन्द हो जाओ किन्तु कर्मों का उदय होनेपर तो पराधीन ही है। अतः अपने स्वरूपको पहिचानो और पर-पदार्थोंसे स्नेह हटाओ इसीका नाम स्वतन्त्रता है। अपने स्वभाव का भान हो, सम्यक् दर्शन उत्पन्न हो, उसका नाम स्वतन्त्रता है। कितनी ही आपत्ति क्यों न आवें तो भी ज्ञाता दृष्टा रहो ऐसी सद्बुद्धि अन्तरंगमें आवे तो उसका नाम सच्ची आजादी है।

जब जिससे तीव्र मोह था उससे ही मोह छूट गया तब इन छोटी-छोटी बातोंमें क्यों राग करते हो। जैसे एक सेठका एक व्यक्तिपर एक लाख रुपया चाहिये था। वह हो गया गरीब, तो अन्य व्यक्तियोंने सेठजीसे कहा कि बेचारे की वह दशा न रही अतः अब केवल ५००) ही लेलो ९९५००) छोड़ दो। तो सेठजीने सोचा कि जब सभी छोड़ दिया तब ५००) के लिये क्यों लेनेका नाम करना। ऐसे ही उसी प्रकार सोचना चाहिये कि जब हमें जिससे कुटुम्बमें सबसे अत्यधिक राग-मोह था वही बीत गया तब इन थोड़ी थोड़ी बातोंमें क्या राग करना, क्यों ममता करनी। मोही जन इष्टके बीत जानेपर बहुत अधिक शोक करते हैं—हाय मैं लुट गया, मैं मर गया। अरे तेरा क्या लुट गया तेरी आत्मा तो तुझमें है उसका भजन कर। यदि एकाकी जीवन मिला तो उसमें खेद क्यों।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अब तो बल्कि और खुशी होना चाहिये कि भगवानका ध्यान करनेकी योग्यता तो आ गयी, मेरे भाव अब निर्मल बनेंगे, ऐसा विचार करना चाहिये उस परिस्थितिमें तो, न कि दुःख करना चाहिये। रामचन्द्रजीको सबसे अधिक मोह लक्ष्मणसे था ऐसा कि उसके मरनेपर भी उसे लिये-लिये फिरे। और जब उससे ही उनका मोह छूट गया तब किसीसे मोह न रहा फिर वे दिगम्बर निर्ग्रन्थ मुनि हो गये और मुक्त हो गये। अतः जब सबसे बड़ा मोह ही बीत गया फिर छोटी २ बातोंमें क्यों पड़ना।

पवनञ्जय अन्जनासे नाराज था। मानसरोवरपर चकवा, चकवीका वियोग देखा तो उपयोग बदल गया। और जब युद्धसे लौटकर घर पर अन्जनाको न पाकर यह सुना कि माँ ने उसे घरसे निकाल दिया। तब उसने विचार किया कि मेरा जिससे तीव्र मोह था जब वही छूट गया तब इन प्राणोंसे क्या फायदा खैर, वह और रूपमें था पर अन्यत्र राग तो न रहा। किन्तु यहां तो मोही जीवोंमें ऐसी आदत पड़ी है कि यदि बड़ा राग छूटा तो भी छोटेमें प्रवृत्ति करके राग बढ़ा लेना। आचार्योंने कहा है कि रागी होगा तो कर्मोंसे बन्धेगा और वीतरागी होगा तो कर्मोंसे छूटेगा! कर्ममुक्त होना है तो राग छोड़ दो। जिनकी हम पूजा करते हैं दर्शन करते हैं, उन्होंने और किया क्या, अपनेको निर्मल बनाया, अपना ज्ञान निर्मल रखा, वीतरागी रहे। ज्ञान दर्शन शक्ति अनन्त प्रकट हुई, स्वच्छ होगये कर्म रहित होगये! परम आनन्दको पाया तब वे परमात्मा होगये! अतः उनके दर्शन कर यही विचार पैदा करो कि जैसा तुमने किया है वैसा ही मैं भी करूं। और वह होगा भेदविज्ञानसे! भेदविज्ञानके बलसे परपदार्थसे हटकर निज आत्मामें लगें! चैतन्यमात्र अपने आपको निरखा, यह उपाय किया, कर्मबन्ध टूटे, आत्मामें विकास हुआ! सब पदार्थोंको जानकर भी अपने आनन्दके रसमें लीन रहे। यह विचार कर दर्शन करना चाहिये। ऐसा नहीं कि मेरे बाल बच्चे सुखी रहें, इस भाव से दर्शन करें,इससे परतन्त्रता बढ़ती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अपने भावोंसे ही यह प्राणीं पराधीन होता है और अपने भावोंसे ही स्वाधीन होता है। वैसे परमार्थ दृष्टिसे देखा जावे तो यह किसीके आधीन है नहीं किन्तु अज्ञानवश काल्पनिक अपने भाव बनाकर आधीन बनता है। यह आत्मा तो ज्ञान आनन्दका पुञ्ज है। न इसमें ज्ञान बाहरसे आता न आनन्द ही। वह तो स्वयं ज्ञान मूर्ति है! ऐसा अपनेको सोचे तो आनन्द प्राप्त हो। सब जगह घूम आओ आखिरमें अपनेको ही बड़ा पाओगे। अपना ही सहज स्वभाव बड़ा मिलेगा। राग छोड़ दो तो उपद्रवरहित हो जाओगे। अन्यथा क्लेश ही प्राप्त होगा। रागके कारण ही अन्तरमें ऐसा भावका वातावरण बनता कि मरणके बाद फिर भी शरीरको पाता है जो कि दुखका मूल है। अब शरीर के भी रागको छोड़कर अपने वास्तविक स्वरूपको पहिचानों, उसका ध्यान करो! मोह भी करो और ध्यानका आनन्द भी मिल जावे यह दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं। अतः राग त्यागकर अपने स्वरूपको पहिचानकर मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

देखो–यह रागभाव जो कि दुस्त्याज्य बन रहा है, क्या है केवल कल्पनाका पुलावा है। वस्तुका विचार करो तो राग न तो आत्माकी चीज है, न कर्मोंकी चीज है और न विषयोंकी चीज है फिर भी इस मायामें कैसा बानक बन रहा है कि विषयोंका तो आश्रय है, कर्मोंदयका निमित्त है और आत्माका उस क्षणका वह एक परिणमन है परमार्थसे देखो तो कुछ भी तथ्य नहीं है। ये विषय भी छूटेंगे, टलेंगे, जो पर पदार्थ हैं इनका संयोग अललटप है कोई कायदेसे या सिलसिलेसे या खातिरीसे नहीं है वे कर्मोदय भी उसी क्षण मिट जाते हैं जिनका कि निमित्त पाकर ये रागादिभाव होते हैं, अगले क्षण अन्य कर्मोदय हो जाते हैं इतनी विडम्बना रहती है जिसका परिणाम यह है कि बन्धन चलता रहता है। ये रागादिभाव भी एक क्षण होकर मिट जाते हैं। यह बात और है कि और और रागादि भाव निरन्तर होते चले जाते हैं। इन भावोंमें तथ्य कुछ नहीं है। रागादिभाव असार हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



दुःखरूप हैं। मिटते तो ये है ही, ज्ञानबल से खुद मिटा दिया जाय तो आनन्दमय प्रभुके दर्शन भी होंगे। इन रागादिभावोंके कारण ही स्वतन्त्रताका विनाश है। वास्तविक स्वतन्त्रताका विनाश होनेपर भगवानका दर्शन असंभव है, आत्मदर्शन असंभव है। सो अब रागदि-भावोंसे भिन्न अपने ज्ञायक स्वरूपको लक्ष्यमें लेकर स्वतन्त्र होऊं और स्वयं स्वयंमें आनन्दमग्न होऊं।

ज्ञात्वा रागफलं-दुःखं जीवानां भ्रमतामिह।
रागं मुञ्चानि नो? मुक्त्वा स्यां स्वस्मै वे सुखी स्वयम् ॥१-१८॥

जितने भी जीव घूम रहे हैं यह सब रागका फल हैं। इनको दुख ही रहा आज तक ममताके कारण, मोहके कारण, रागके कारण ये आज तक भी क्लेश भोग रहे हैं। इन्होंने सुख प्राप्त नहीं किया। किसीको भी बिठाकर उसकी कहानी सुन लो सब कुछ सुननेके बाद अन्तमें परिणाम यही निकलेगा कि किसीमें राग है अतः दुखी है। अपने दुःखकी जितनी भी कहानी बतावेगा उसमें किसीसे न किसीसे राग मिलेगा। बस उसी रागके ही परिणामके कारण वह दुखी है। कोई दुख की कहानीमें यह बतावेगा कि मैं भूखों मर रहा हूं, मेरी आजीविका नहीं है। कोई यों बतावेगा कि मेरी समाजमें इज्जत न हुई, कोई यह बतावेगा कि जैसा मैं चाहता था वैसा न हुआ! यह सब दुःख रागादिक के ही कारण तो हुआ है, अन्य कुछ नहीं। जिसे दुःख नहीं चाहिये उसे राग, मोह, ममता छोड़ देना चाहिये। शादी हो गयी, बच्चे हो गये अब करना तो सब पड़ेगा ही किन्तु हे भैय्या सब कुछ करते हुए भी यही भाव रखो कि ये मेरे कोई नहीं मैं इनका कुछ नहीं, न ये मुझे सुख पहुंचा सकते हैं न मैं ही इन्हें सुख पहुंचा सकता हूं। इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, ये तो मुझे करना पड़ रहा है ऐसा विचार करनेसे दुःख न होगा। क्या इन सब दुःखोंको देखकर तथा अपने दुःखोंको विचारकर क्या मुझे राग नहीं छोड़ना चाहिये अवश्य ही त्याग करना चाहिये। शराब पीनेवाला शराबकी दुकान पर शराब खरीदने जाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


है तो कहता है कि देखो भाई मुझे बिलायती असली माल चाहिये, मुझे बढ़िया वाली शराब चाहिये तब वह यही दिखाकर कहता है उसको कि क्या तुझे इन बेहोश पड़े हुए अपने बाप, चाचाको भी देखकर विश्वास नहीं होता कि मेरी शराब बहुत बढ़िया व अच्छी होगी ! अतः हे भाइयों ! यदि रागका फल देखना है तो स्वयं के दुःख देखो और इन सब ससारी प्राणियोंके दुःखोंको देख लो कि रागके कारण कैसे-कैसे कष्ट उठाये जा रहे हैं ? और तूने स्वयं कैसे-कैसे कष्ट झेले ? अब क्या ये सब देखकर भी तुझे विश्वास नहीं होता कि यह राग बुद्धि छोड़ने योग्य है। यदि जाननेमें आ गया कि मैं तो स्वचतुष्टय-रूप हूं तो कोई क्या इस ज्ञानको नष्ट कर सकता है, विपरीतकर सकता है कोई कुछ नहीं कर सकता। जितने भी दुनियाके जीव हैं उन सबमें मैं निराला हूं। ये सब रागके परिणाम देखकर यही धारणा बनावे कि मैं तो चैतन्यस्वरूप अपने सहज स्वरूपमें रहने वाला अनाद्यनन्त हूं। अतः मैं इन सबको त्यागकर ज्ञायक भगवानके दर्शन करूं ! भगवानके दर्शन ज्ञान ही तो करता है और उपयोगमें यदि राग बसा हुआ है तो भगवान कैसे दिख सकता है। उपयोगमें राग न हो तो भगवानके दर्शन हो सकते हैं। जब रागपर उपयोग है तब स्वभावपर नहीं और जब स्वभावपर उपयोग है तब उपयोग रागपर नहीं ! तब मैं राग छोड़कर अपनेमें अपने लिए अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊं।

भैया ! यह राग तो एक न एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा, तथा राग-द्वेष रहित वीतराग अवस्थाको एक न एक दिन तो अवश्य ही धारण करना पड़ेगा तभी मुक्ति प्राप्त हो सकेगी तब क्यों अपना समय नष्ट करके दुखोंमें रुलता फिरूं। इसके लिए कोई अवस्था विशेष निश्चित नहीं कि वृद्धावस्थामें ही रागद्वेष छोड़ना चाहिये या अमुक अवस्थामें त्याग करना चाहिये, ये तो जितना शीघ्र छूट जावे उतना ही अच्छा है ! जैसे २ रागबुद्धि करोगे वैसे ही कर्मबन्ध होते जायेंगे, और जैसे-जैसे वीतरागी होवोगे तो कर्म स्वयं ही तड़ातड़ टूटते चले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जावेंगे। अतः हे आत्मन्! तू अपना आत्महित पहिचान तेरा स्वभाव पररूप नहीं। स्वयंका सहज स्वभाव चेतना है, ज्ञानपुञ्ज है, ज्योतिपुञ्ज है। भैया, राग था शादीकी.-राग था बच्चे पैदा हुए। अब इनके फन्दको स्वयंको ही तो भोगेगा। अन्य कौन भोगेगा! आनन्दका घातक राग है। आनन्दका और रागका, बैर है एकके होनेपर दूसरा नहीं ठहर सकता। जब ये शरीर भी अपना नहीं तब दूसरोंको अपना मानना कहां की बुद्धिमानी है, सोचो तब अपना कैसे हो सकता उनका शरीर! और जब दूसरे जीव अपने नहीं बन सकते फिर ये अचेतन पदार्थ धन, वैभव आदि कैसे अपने हो सकते हैं! जब अपना है ही नहीं तब ऐसा मान ये तो स्वयं छूट जावेंगे। माननेमें ही राग है, और माननेमें त्याग है। मानने बिना तो रहते हो नहीं, सो मानते जावो, किन्तु मानो सच्ची बातको ही! जिसने अपने भीतरमें ऐसा उपयोग कर लिया तो बेड़ा पार हैं। चाहे कर न सको, किन्तु अन्तरंगसे मान तो लो। ज्ञान सम्यक रखो स्वयं सुखी होवोगे।

एक शिष्य था पढ़ लिख कर बोला कि गुरुजी मैं तीर्थाटन करने जाता हूं, गुरु बोले क्या करेगा जाकर अपने अन्दरमें तो सब है। शिष्य नहीं माना, बोला कि मैं तो जाऊंगा ही! गुरु जी ने आज्ञा देदी कि ठीक है चलेजाओ। जब वह चल दिया तो आगे रास्तेमें उसे एक बारात मिली। दुल्हेको उसने देखा तो पूछा कि भाई यह सब क्या है, क्योंकि बचपन से गुरू जी के पास रहा था अतः वह ये सब जानता था नहीं। तब उसे बताया गया कि ये एक बारात है फिर पूछा कि बारात क्या होती है? तो वे बोले कि भैय्या इसमें एक दुल्हा होता है उसकी शादी होती है औरत घरमें आती है फिर बालबच्चे पैदा होते हैं! इतना सुनकर वह आगे चल दिया और आगे जाकर एक कुएंपर सो गया तो उसे वही सब दृश्य सपनेमें दिखायी देने लगा कि मेरी शादी हो गयी औरत घर आ गयी और वह पासमें लेटी है बीचमें बच्चा लेटा है, औरत कह रही है कि थोड़ा उधरको सरक जाओ, वह सरक गया, फिर वह बोली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कि थोड़ा और सरक जाओ तब वह जैसे ही सरका कि कुएंमें गिर पड़ा, पानीमें गिरनेसे उसकी आँख खुल गयी तब वह सोचने लगा कि अब इससे बाहर कैसे निकला जावे ? कुछ समय बाद उस गांवका जमींदार लोटा लेकर पानी भरने आया। जैसे ही उसने लोटा कुएंमें लटकाया कि उस शिष्यने पकड़ लिया और बोला कि भैय्या मैं भूत नहीं हूं तुम मुझे बाहर निकालो तो मैं सब कहानी बताऊंगा। उसने उसे बाहर निकाला व पूंछा अब बताओ क्या बात है ? कहांके रहने वाले हो ? कैसे कुएं में गिर गये। तब वह शिष्य बोला कि हमारे आप उपकारी हैं मुझे बाहर निकालकर उपकार किया है अतः आप पहिले अपना परिचय दीजिये। तब वह जमींदार बोला कि मैं इस गांवका जमींदार हूं, मेरी इतनी जमीन है, इतनी दौलत है और भरापूरा परिवार है। तब वह शिष्य कभी उसे नीचेसे देखे कभी ऊपर से ! वह जमींदार बोला कि तुम मुझे इस प्रकार क्यों देख रहे हो। शिष्य बोला कि मैं तुम्हें नहीं देख रहा हूं। मैं तो यह सोच रहा हूं कि जब मैंने तो स्वप्न में ही गृहस्थी बसायी तो कुएंमें गिर गया। और तुम इस प्रकार अपना समाचार बता रहे हो, अतः मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि तुम जिन्दा कैसे हो ? सो भैया! जिन्दा तो वही है जो अपना धर्म पालता है वही जीवन है। वह जीव क्या जिन्दा जिसे अपना धर्म ज्ञात भी नहीं। अब तक इस जीवने अनन्ते भव प्राप्त किये अनन्ते जन्म मरण किये। आज यह जन्म है सो इसकी भी गिनती क्या। जीवन तो तबसे मानो जबसे निज सहज स्वरूपकी दृष्टि बने कि मैं तो स्वतः सिद्ध, अनादि, अनन्त, अहेतुक, नित्य अन्तः प्रकाशमान चैतन्य ज्योति हूं। यह मैं स्वयं ज्ञानघन एवं आनन्दमय हूं। मैं अपनेमें ही अपने आप स्थिर होकर आनन्दमग्न रहूं।

द्रष्टारं स्वयमात्मानं पश्य पश्य न चेतरम्।
तिष्ठानि निर्विशेषं चेत्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-१९॥

हे आत्मन् तू अपनेको ज्ञाता व द्रष्टा देख और अपने स्वरूपको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



आनेमें पहचान ! तू मात्र जानता देखता है, शुद्ध स्वभाव वाला है। तू ज्ञान स्वरूप सर्वस्व है, तू ज्ञानी है। तेरा काम केवल ज्ञान है, अर्थात् ज्ञान मात्र रहे, यह तेरा काम है, इसके अतिरिक्त और कुछ काम नहीं।

तू परिपूर्ण है, तू अपनेको ज्ञानमय देख, अपने स्वरूपसे आगे बढ़ कर जहां किसी तरंगरूप अपनी श्रद्धा हुई वहीं पर क्लेश है, जन्म मरणकी परम्परा है, संसारका रोना और नाना दुःख उठाना है। वह सब पर्यायबुद्धिको लिए हुए है, सामान्य स्वरूपमें कोई क्लेश नहीं। जैसे किसी बिरादरीकी पंगत है, उसमें गरीब भाई, करोड़पती, लखपती भाई बहुतसे बैठे हैं, परन्तु उस समयपर कोई अपनेको नानारूप नहीं समझता, केवल अपनी जातिका एक सेवक समझता है, वहाँ करोड़पती, लाखपती, गरीब व पंडित सभी एक हैं, वहां नानापन न रहे, यदि रहे तो उनका तिरस्कार हो जाय, उनकी शोभा नहीं होती, इसी तरहसे इस जगतके अन्दर जितने जीव हैं वे सब एक जातिके हैं चैतन्य स्वभावमय हैं। इनमें परस्पर एक दूसरेसे अन्तर नहीं है। जो अन्तर यहाँ है वह उपाधि साथ लिये रहनेसे आगया है, फिर भी जो परिणतिको अपनाता नहीं है, उस अन्तर की उपेक्षा करता है और चैतन्यस्वभावमात्र रूपसे सबको निरखता है, वह जीव मोक्षका मार्ग पाता है। किन्तु मोही अपनी पर्याय बुद्धिके कारण स्वभावसे विपरीत अपनेको नाना रूप मान लेता है, मैं अमुक कार्यवाला हूं, यशवाला हूं, कुटुम्बवाला हूं, लड़के बच्चों वाला हूं, इज्जतवाला हूं, किसी भी प्रकारसे अपनेको बेकार करना, बस यही बज्रकी चोट, उसके गले पड़ी, इससे फिर आगे जन्म मरणका चक्कर लग गया। सो भैया, विकल्प छोड़कर सब जीवोंको समान देखकर जो अपनेको ज्ञाता द्रष्टामात्र देखता है वह मुक्तिका मार्ग प्राप्त कर लेता है।

यदि अपने आपको केवल द्रष्टा देखें और सब प्रकारकी बिधिसे अपनेको प्राप्त करता रहे याने सामान्यरूप रहे तो अपने आप सुखी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



हो सकते हैं, सुख स्वरूप तो हम हैं ही, सो यदि सुख स्वरूप अपनेको जाने तो यह पूर्ण सुखी हो जायगा, मैं केवल ज्ञानमात्र हूं, इस आत्माका किसी भी पदार्थसे किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, मैं स्वतन्त्र हूं, अविनाशी हूं, ऐसा अपनेको भावनेका निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये।

जो कुछ मुझे दीखता है वह सब रूप रूप ही तो है, और जो आत्मा पदार्थ है वह शरीरसे परे बहुत बड़े गुप्त अनूप ज्ञातिमय एक वस्तु है, वह सब किसीको दीखता नहीं है, ऐसा वह बढ़ता ज्ञान मानों शून्य रूपमें बदलना चाहता है देखो जो दिखता है वह जाननेवाला तत्त्व नहीं, व जो जाननेवाला है वह दिखनेवाला तत्त्व नहीं है, इससे हम स्वयं कह सकते हैं कि अब बोलनेकी कोई गुंजाइस नहीं, इस जगतमें बोलनेका कोई स्थान नहीं, जो दीखता है वह जड़ है, उससे बोलनेसे लाभ क्या, जो जाननेवाला है वह दीखता नहीं, उससे बोला ही कैसे जा सकता है, और जो जानने वाले तत्त्व हैं उनके यथार्थ रूप विचारो तो केवल ज्ञानमय प्रतिभास ही है, उसका कार्य ज्ञान ही है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ कार्य ही नहीं है, वह तो अनन्त अविनाशी चित् है इसका कोई नाम ही नहीं।

जैसा यह प्रभू है एवं ज्ञानरूपसे साकार यह ज्ञानमय पदार्थ है, ऐसा इस तत्त्वको न जानकर और इसको नानारूप मान कर यह नाथ दुखी हुआ है, इस जीवको आत्मस्वरूप दिखानेवाला कोई दुनियामें अन्य उपाय नहीं है, यह स्वयं देख लेता है। जैसे एक कथानक है कि एक आदमी ज्ञानी आदमीके पास गया, कहता है कि महाराज, मुझमें ज्ञान कर दीजिए, ज्ञानी बोला कि यह तो मामूली सी बात है, जो उस नदीमें मगर बैठता है आगे मार्गके पास, उसके पास जाओ और उससे पूछ लो। वह वहां गया, जब मगर निकला तो उससे आदमी बोला कि मेरेमें ज्ञान नहीं है, मेरेमें ज्ञान कर दीजिए। मगर बोला भाई कुएसे जरा पानी ले आइये, मुझे प्यास लगी है। प्यास बुझा लूं, तब तुम्हे ज्ञान बताऊंगा आदमी कहता है कि तुम तो नदीमें बैठे हुए हो फिर प्यास कैसी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मगर कहता है कि भाई तुम भी तो ज्ञान स्वरूपमें बैठे हुए हो, ज्ञानस्वरूप-मय आत्मा है, तुम स्वयं ज्ञान स्वरूप हो, फिर ज्ञानकी प्रार्थना कैसी।

इस ज्ञानमय पदार्थमें ज्ञान है, ही मैं जानता हूं, अपने में जानता हूं, इनके अतिरिक्त और कोई कार्य ही नहीं है, जाननेके अतिरिक्त यह जीव कुछ नहीं करता तुम अपने स्वरूपमय आत्मा हो, जगतके सारे पदार्थ अपने स्वरूपमय हैं, आत्मामें तो उसका अपना ही काम है, वह अपने स्वरूपसे बाहर कुछ नहीं करता। आप अपने अन्दर ही स्वयं देख सकते हैं, स्वयं यह ही ज्ञाता है, बाहरसे आँख मूंद कर अन्तरमें देखो क्या महसूस होता है। बाहर गए कि उस जालमें फसा मैं, सत्य कुछ देख ही न सकूंगा। बाहरसे भीतरकी वस्तुको बन्धन कैसे लगेगा, बाहरी स्वरूपका बन्धन कैसे लगेगा, हमें ! वस्तुतः हम अपने ही कल्पना जालमें बन्धते हैं।

कहते हैं, एक बार राजा जनकके पास एक व्यक्ति गया, बोला कि मैं बहुत फसा हूं, परिवारने मुझे बांध डाला है, महाराज उस बन्धनसे छुटाएं, राजाने कोई उत्तर नहीं दिया, क्या किया कि सामने जो लोहेका डंडा खड़ा था उसके पास गया और डंडेको अपनी जेटमें भर लिया व बोला मुझे इस खम्भे ने पकड़ लिया है, इस बन्धनसे छूटूं तब तुम्हें उत्तर दूंगा। उस व्यक्तिने कहा कि खम्भे ने तुम्हें पकड़ लिया है कि तुमने खम्भेको पकड़ लिया है, राजा जनक बोले कि यही तो तुम्हारा उत्तर है, अरे भाई तुम्हें परिवार ने जकड़ लिया कि तू ही कल्पनासे उन्हें जकड़े है, तेरेमें तो तेरा स्वरूप है, प्रभू है और दूसरा कोई नहीं, तू ही अपने स्वरूपको भूलकर कल्पनाका जाल पूरता है और खुदको बन्धनमें बान्धता है।

यह तो अपने अपने ज्ञानकी बात है, जीवोंका उद्धार कहांसे होता है, ज्ञान ही उस शान्तिका कारण बनेगा, जैसे जैसे उस ज्ञानका आदर करेगा वैसे वैसे ज्ञान बढ़ेगा, जैसे जैसे हम बाहरी बातोंमें उपयोग लगाएं वैसे वैसे ज्ञानका तिरोभाव बढ़ेगा। सो भैया इतना ऊंचा पद पाया है, धन पाया है, उत्तम कुल पाया है, इतना साधन होनेपर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



भी हम अपने ज्ञानका सुधार नहीं करते तो क्या है ? सब व्यर्थ है, अन्तमें पछताना ही हाथ आयेगा। एक मनुष्य था उसको किसी ने ऐसा उपाय बताया कि इस पहाड़में बहुतसे पत्थर हैं, इस पहाड़से तू पत्थर ले आ, उनमें कोई पारस भी मिलेगा उससे तू फिर मनमाना लोहेका सोना बना लेना। तब उसने दो चार ट्रक पत्थर समुद्रके किनारे गेर दिये और समुद्रकी ओर लोहेका खम्भा जैसा मोटा डंडा रख लिया, वह पत्थरको डंडासे मारे, देखे व समुद्रमें डाल देवे, एक पत्थर मारा तो देखाकि लोहेका खम्भा सोना नहीं हुआ। उसने पानीमें डाल दिया, अब ऐसा बार बार करता गया, एक बार पारस पत्थर भी हाथ आया, उसे भी उसी धुन में लोहेके डण्डेसे मार समुद्रमें फेंक दिया। अब देखता है कि लोहेका डंडा सोना हो गया, समझता है कि वह पारस पत्थर था जो समुद्रमें फेंक दिया। इसी तरहसे फिरसे जन्म लिया और फिर मरण आ गया, इस तरह मानवका जन्म मरण होता रहता है। तथा उन्हीं उन्हीं विषयों के कार्यमें लगे और मरे, उसी ध्वनिमें लगे रहे और विषयभोगोंमें लगे लगे मरण किया। बड़ी अवस्था हुई, कि पछतावा होगा, यों ही जिन्दगी गवा दी। न आत्माको धैर्य दिया न विश्रामसे रहे। न ज्ञानका अनुभव किया, जो कुछ भी किया, वह मिट जाने वाला ही काम किया।

प्रभो! तू केवल ज्ञानमय तत्त्व है, तेरेमें दूसरे पदार्थका कुछ नहीं आता। जोतुझ पदार्थमें है वह बाहर नहीं जाता! तुम अपनेको स्वयं देखो अपने आपको जाननेकी पद्धति प्राप्त करो! कहीं कोई भी अन्य तत्त्व इस नाथमें है कुछ नहीं। इसका स्वरूप ज्ञानघन है, आनन्दमय है इस प्रभूसे अन्य पदार्थका सम्बन्ध नहीं है। और ऐसा ही देखें तो इसकी दुनियाँ अलौकिक हो जायेगी। और फिर उस भावसे समस्त विपदाएं समाप्त हो जायेंगी।

जगतके प्राणिथयोंको जितना भी क्लेश है वह सब रागका ही क्लेश है! जैसे इच्छा हो कि क्लेशको दूर करना चाहिये तब उसका अर्थ यह समझो कि राग दूर करना चाहिये। इसका भी उपाय सोचना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



चाहिये कि रागको कैसे मिटाना है। राग मिटे तो क्लेश मिटेगा, और राग न मिट सका तो क्लेश नहीं मिट सकता, राग मिटनेका उपाय क्या है, उसका उपाय यह है कि अपने स्वभावको रागरहित देखना चाहिए और अन्य उपाय करो तो वह राग दब तो जायगा पर मिटेगा नहीं, जैसे किसी वस्तुका राग है तो उसके खिलाफ किसी काममें लग जावे, तपमें, पूजामें, परोपकारमें, लगे और कोई उपाय है तो उसे करना चाहिये। जो कोई और उसका उपाय है वह सब करना तो चाहिए परन्तु इस उपायसे राग दब तो जायगा, पर राग मूलसे नष्ट न होगा मेरा रागमें रहनेका स्वभाव नहीं है यह तो सब मोहकी लीला है। अपनेको राग-रहित ज्ञायकमात्र देख सकता है यदि तो वह शान्तिका व राग मिटनेका मूल उपाय है। जो इसके आगे देखता है, अपना वैभव कुटुम्ब आदि देखता है, यह सब उसके मोहकी लीला है।

हे आत्मन, तू मात्र ज्ञान स्वरूप है, तू अपनेको केवल ज्ञान स्वरूप तो देख, इतना तेरा सर्वस्व है, इतनी यह उसकी सारी दुनिया है, इसके अलावा और मैं कुछ नहीं हूं, इस रूपसे तू अपनेको देख, इतना तो साहस कर कि एक बार समस्त पदार्थोंकी उपेक्षा कर, मैं ज्ञानमात्र हूं, ऐसा अनुभव कर। विकल्प जब दूर होगा तो विपदाएं सारी दूर होंगी। जगतके पदार्थोंसे इसको विपदा नहीं आती, यह प्राणी अपने विचारोंको बनाकर स्वयं दुखी हो जाता है, बस इसीका नाम विपदा है, बाहरी तो बाहरी ही है ? बाहरी पदार्थोंसे कैसे विपदा आयेगी ! विपदा तो उसके ही अन्दरसे आती है, विकल्पका नाम ही विपदा है। कोई मानता हैं कि उसका बस धन कम है, धनके कम होनेसे विपदा नहीं है, किन्तु धनसे अपना हित समझकर फिर धनकी कमी सोचते रहना ही विपदा है। इसलिये विपदा तो ज्ञानसे दूर होगी। भ्रमसे उत्पन्न हुई विपदाका नाश भ्रमनाशक ज्ञानसे होगा। इसका एक मात्र उपाय है, राग रहित अपना स्वरूप देखे।

जैसे किसी पुरुषको किसी बातका भ्रम होनेसे दुखी होजाय तो दुख दूर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


करनेका उपाय केवल भ्रम दूर कर लेना ही है, जैसे कि स्वप्न देखनेसे दुख हुआ, स्वप्नमें खोटी बात देखी, खोटी बातसे जो दुःख उत्पन्न होता है उसका नाश नींद खुल जानेसे होता है, जैसे स्वप्नमें देखा कि मैं जंगलमें घूम रहा हूं, देखाकि एक सिंह सामने आ रहा है। यह मुख बाये चला आ रहा है, यदि यह देखते हैं तो क्लेश होता है, उस दुखको मिटानेका कोइ उपाय है, सुन्दर हवा चले तो क्या क्लेश दूर हो जायगा, क्या माता पिता पास बैठे हो तो क्लेश दूर हो जायगा। उसका कोई उपाय नहीं है, इसका केवल एक उपाय यह है कि नींद खुल जाना चाहिए। यदि नींद खुले तब जाने कि यहाँ जंगल आदि कुछ नहीं, तब उसे आराम मिलेगा।

यह परिवार मेरा है, यह दौलत मेरी है, ये मित्रजन मेरे हैं, मेरी लोगोंमें इज्जत ऐसी है, इस बातको देखनेसे सारे क्लेश स्वप्नवत् रहेंगे। बीचमें इज्जतको धब्बा लगा तो क्लेश है, धनको उपार्जन करनेका क्लेश, रक्षामें क्लेश, नाशमें क्लेश, किसी भी प्रकारके विकल्प बनाए जाते हैं तो वहाँ पर प्रारम्भमें भी क्लेश, बीचमें भी क्लेश। भ्रमसे होने वाले क्लेशको दूर करनेका क्या यह उपाय है कि किसी तरहसे इज्जतको दुगुनी बना लें, नहीं, यह कोई उपाय नहीं है, स्वयं सत्य स्वरूपको देखलो, तब क्लेश अनायास ही दूर हो जायगा। उसका तो केवल ज्ञान स्वरूप है, ज्ञानसे तो और कुछ नहीं होता। धन, इज्जत, परिवार आदि से इसको लाभ नहीं है, बल्कि हानि है। यदि ज्ञान स्वरूप आपको देखकर आपमें संतुष्ट रहे तो सब क्लेश मिट जावेंगे। उस ज्ञानको ज्ञानके द्वारा खुद जानता है यह ज्ञानी, ज्ञानके लिए यह जानता है, इससे अधिक उसका कुछ कर्त्तव्य नहीं है ऐसी भावनाके बल पर जो ज्ञानी ज्ञायक स्वरूपका अनुभव करता है, उसको जो अनुपम आनन्द मिलता है वह न तो इन्द्रके मुअस्सर है और न चक्रवर्तियोंको मुअस्सर है। वह तो एक प्रभूका जैसा आनन्द है, तपस्याओं एवं अन्य बड़े बड़े लौकिक कामोंमें भी वह सामर्थ्य नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जो सामर्थ्य ज्ञानीको है, जो क्लेश है उसे तो दूर करना है ही, सो भैया! निश्चय करलो कि क्लेश केवल रागवश है, दुख दूर करना है तो रागको छोड़ दे, राग करना दुख ही है। वाह्य पदार्थ कुछ वाधक चीज नहीं! वह तो अपने द्रव्यकाल क्षेत्रभाव रूप है, क्या कोई बाहरी पदार्थ तेरे साथ आया है, अच्छा वह चेतन है या अचेतन, क्या कोई भी पदार्थ तेरे हांथ होगा, मेरा तो मेरेमें ही स्वरूपका काम है। राग तो कल्पना-गत है। भगवान और इस आत्मामें अन्तर क्या है, केवल राग हो या न हो यही अन्तर है। जहां राग नहीं है वह भगवान है जहाँ राग है वह वहाँ प्राणी है। राग करनेपर लाभ कुछ नहीं रहता है, बल्कि उससे भी अधिक टोटेमें रहता है। अपनी स्वतन्त्रताका ख्याल कर राग छोड़ दे तो वह भगवान हो जानेके सम्मुख है, जो रागमें और स्वरूपमे अन्तर नहीं जानता है वह संसारमें रागका काम करता है।

हे आत्मन्, तू अपने आपको स्वयं द्रष्टा देख, जो देखने वाला है वह तू है, जो जानने वाला है वह तू है! जाननेसे आगे न तू है और न तेरा काम, ऐसा सोचकर चिन्ताओंको दूर कर, आरामसे तो ठहर, आराम वहाँ होता है जहाँ हृदयमें आ राम हुआ। हे चिन्तामणि महा-पुरुष तू जिसके उपयोगमें आया वह तो आराममें रहता है। नहीं तो वह निमित्तरूप शिकारियोंके बीचमें पड़ा विकल हो जाता है। भैया! परमार्थसे तो वह स्वयं बद्ध न होता हैं और न मुक्त होता है।

भगवानकी भी भक्ति करते हैं सो भाई भगवान स्वयं जा जाकर किसीको आराम नहीं दिया करता है। कुछ हममें ज्ञान है तो भगवान को ही जानलें, आनन्दका मार्ग मिलेगा! भगवानको प्रसन्न करना भगवानका काम नहीं, यह तो भक्तका काम है, भगवान न तो किसीसे प्रसन्न होता है और न किसी से क्रोधित होता है, यदि ऐसा करने लगे तो वह भगवान ही न रहे, हमारी ही तरह अनाथ प्राणी ही रहा! कैसा भी कोई पापी है, भगवान उसपर क्रुद्ध नहीं होते, भगवानके ज्ञान-पर परिणतिकी झलक आ जाती है, सच पूछो तो जो पर भगवान है उसको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



न तो प्रसन्न ही किया जा सकता है और न उनकी प्रसन्नतासे कोई लाभ है, किन्तु जो अपनेमें बसा हुआ भगवान है उसे मैं प्रसन्न कर सकता हूं। और उसके प्रसन्न करनेसे मुझे लाभ है! उसकी प्रसन्नता ज्ञानके वल पर हैं, मैं अपने सत्य स्वरूपको अपने ज्ञानमें रखूं तो भगवान मुझ पर प्रसन्न हैं, केवल अपने स्वरूप मात्रमें रहकर केवल ज्ञानमय विशुद्ध तत्त्व रहूं, ऐसा वल उसमें है तो भगवान उसपर प्रसन्न होगा, अब उसे क्या चाहिये! उससे वढ़ कर और कुछ नहीं।

हे आत्मन, तू अपनेको रागरहित देख। तेरेमें तो राग करनेका स्वभाव ही नहीं, तेरेमें तो राग करनेका कोई काम ही नहीं, तू जानता चला आ रहा है। जानता है! जाननेसे आगे मत वढ़ तो तेरे सारे क्लेश समाप्त हो जायें और तू अपने आप सुखी हो जायगा, सुखका पानेका यह उपाय है कि तू रागको दूर कर।

अहंकाराहिना दष्टः कर्ता भोक्ता भवेन्नमे।
ममत्वहंत्वभावोपि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।। १-२० ।।

जगतका यह प्राणी अहंकार रूपी सर्पसे डसा हुआ है, जैसे सर्पसे डसा हुआ पुरुष वेहोश हो जाता है, नई नई तरह की चेष्टाएं करता है, इसी प्रकार अहंकारसे डसा हुआ पुरुष मोह करता है! झगड़ा करता है! वेचैन होता है! नये नये प्रकारकी चेष्टाएं करता है, अहंकारके वस प्रायः सभी जीव हो रहे हैं। एक वच्चेको देखो वह भी अहंकारी होता है। जवान, वूढ़ोंको देखो वह भी अहंकारी होते हैं। शरीरको माना कि मैं हूं, मैं अच्छी जातिका हूं! अच्छे कुलका हूं! यह अहंकार की वात है, लोग मुझे जानें, यह सब विकल्प अहंकारकी वात है।

हे आत्मन् तू अपना स्वरूप तो देख, तेरे स्वरूपमें अहंकार नहीं है, किसी भी प्रकारका विकार नहीं है, तू केवल ज्ञायक स्वरूप है, चेतना स्वरूप पवित्र वस्तु है, तू अपनेको क्या है इसको तो समझ, तू एक ज्ञानमात्र वस्तु है, लोकमें ज्ञान ही पवित्र चीज है, तुझसे पवित्र कौन है। तू पवित्र भगवान रूप होकर, मायामें फसकर जनम मरणके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



क्लेश सह रहा है, तू अहंकारसे डसा है। अहंकारकी बात भी नहीं फिर भी अहंकारसे डसा हैं। एक बार राजा भोजकी सभामें चतुर आदमी बैठे थे, राजाने किसी एक चतुरसे कहा कि तुम बड़ी बढ़िया कविता पेश करो। उस चतुर आदमी ने केवल कोरा कागज देकर, जिसमें कुछ नहीं लिखा था, कहा कि लो यह ही सर्वाधिक सुन्दर कविता है, परन्तु महाराज जो शुद्ध है उसे ही कविता दिखेगी, राजाने देखा, तो कुछ था ही नहीं, परन्तु मैं अशुद्ध न कहलाऊं इस कारण कह दिया कि यह बड़ी सुन्दर है, खूब सुन्दर कविता है! पासमें जो बैठे थे उनको राजाने दिखाया पूंछा कि कैसी कविता है, देखकर वे भी बहुत गुस्सा हो गए सोचा कि इसमें कुछ लिखा ही नहीं, बड़ा गजब हैं, लेकिन शानमें कहना यही पड़ा कि बड़ी सुन्दर है, यह अहंकारकी ही तो बात है, लोकमें जितनी भी घटनाएं ऐसी होती हैं कि बात कुछ भी न हो किन्तु शानमें कुछ दिखाना पड़ता हैं, अहंकारने इस प्राणीको डस रखा है, सो निरन्तर इसमें अहंकार भरा रहता है मैं बड़े गौरवका हूं! मैं बड़े घरानेका हूं, लेकिन अपनेको जो समझता रहता है वह सत्य जानता है कि यह दृश्यमान तू है क्या, खाक। पर वस्तु क्या तेरे आनन्दकी ऐश्वर्यकी बात है, यह माया भी केवल तेरे स्वरूपमें नहीं है, तेरा कुल तो इतना ऊंचा है कि ऐसा और नहीं, लेकिन इस जीवको तो अहंकार ने ही बर्बाद किया है, अहंकारको छोड़ दे, अर्थात् जैसे सब हैं वैसे ही मैं हूं, जैसे सब जीवोंका स्वरूप है ठीक वैसा ही मेरा भी है, जैसा भगवानका स्वरूप है वैसा मेरा भी स्वरूप है। मेरा जैसा पवित्र कोई वस्तु नहीं है, किन्तु अपना पवित्र स्वरूप नहीं देखता, देखो अगर कोई लुट जाता है किसीका कुछ बर्बाद हो जाता है, कोई दुनियांमें अचानक मर जाता है, चलते चलते हार्ट फेल हो जाता है, सो मानता है कि दूसरोंका हो जाता है। यह सब अहंकारका फल ही तो है। तू ने इस संसारमें अपनेको महान और अन्यको नीच समझ रखा है, इन सब बातोंको देखकर तू सोचता है कि यह सब तो औरोंका हुआ करता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मेरा नहीं। तू भगवान स्वरूप है, वैसे ही सब भगवान स्वरूप हैं, जो यह दशा है यह सब प्रकृतिका विकार है। उसमें उलझने से एक तो जो ये भगवान हैं, उन सब जीवोंका निरादर करता है और दूसरे अपने स्वरूपको भूलता है।

अरे तुझे अहंकार रूपी सर्पका विष चढ़ गया है, और इस अहंकार के वश होकर तू गर्व करता है, कर्ता बनता है। सोसाइटीके करने वाले, नए नए कामोंको करने वाले तू अपनेको मानता है। अपनेको स्वरूप नहीं देखता, जो केवल ज्ञानमात्र है, चेतनामात्र है, जो केवल जाननेका ही काम करता है, इसके अतिरिक्त और कुछ काम नहीं करता। इस निज नाथमें कुल स्वरूप नहीं है, मैं स्वरूपको भूल गया हूं, मैं अमुक काम करता हूं, मैं अमुक काम करूंगा आदि विकल्प विपदामें अपनेको लाता है ! तू अपने स्वरूपको तो देख ! इस चैतन्य प्रभूका कुछ करनेका स्वभाव नहीं है, केवल जाननेका ही स्वभाव हैं।

इसमें अहंकार नहीं है, अहंकार स्वभावसे नहीं है उसको तू करता है। करता तो तू है नहीं, मात्र मानता है केवल कि अमुकको करना हूं, तो स्वतन्त्रताका आनन्द कैसे होगा। यह तेरा कोरा भ्रम है कि विषयका आनन्द मिलता ! देखनेका आनन्द मिलता ! सुननेका आनन्द मिलता ! तू तो ज्ञानमात्र है। केवल ज्ञान करता है, ज्ञानके अतिरिक्त तेरा कोई काम नहीं, भोजन क्या उसका कोई अंश भी तुझे आनन्द देता है। भोजनका तो ज्ञान होता है, उसके साथ मोह है। अमुक वस्तु मीठी है, उसका कुछ ज्ञान हुआ, मोहसे मीठी वस्तुका आकर्षण हुआ। भोजनका आनन्द नहीं ! तू ने जो कल्पना की उसका कुछ आनन्द है, जैसे कोई किसीको बताये कि भाई तेरे घरमें लाख रुप-एका धन है ! इतनी बात सुनते ही वह मौजमें आ गया। मौज उसकी कल्पनाका है, धनका है क्या, मौज धनसे आता है या ज्ञानसे आता है। चार आदमियों ने प्रशंसा कर दी तो वहां सुख मानता तो क्या वह सुख चार आदमियोंकी चेष्टासे आता हैं या उसकी कल्पना बनी कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


देखो चार आदमी भला कह रहे हैं, सो उस कल्पनासे उसका मौज आया। मैं ज्ञानस्वरूप आनन्दको जान रहा हूं। अपने ही ज्ञानसे अज्ञानकी चर्चा करने वाले, आनन्द मग्न हैं। बाह्य आनन्द क्या आनन्द है! बाहरी वस्तुवें क्या आधीन हैं! पुत्र, मित्र आपके आधीन है क्या जो आपके पास रहें, धन क्या आपके आधीन है! आपका तो आपमें भी अधिकार नहीं रहा! दूसरेपर अधिकार करेगा क्या, अपनेको जैसा बनाना चाहता है। बना! अपना है क्या! कोई किसीको नहीं बना पाता आपका आपमें क्या कुछ अधिकार है! नहीं है, आप दूसरेपर अधिकार करना चाह रहे हैं परन्तु अपनेमें अधिकार नहीं, जिस पर अधिकार नहीं किया जा सकता हैं उसकी बात सोच रहे हों।

एक देहातमें पटेल था! वह गाँवका मुखिया था! एक पंचायत जुरी, उसमें ऐसा सवाल आ गया कि भाई ५० और ५० कितने होते हैं, पटेल बोला कि ५० और ५० अस्सी होते हैं! लोगोंने कहा कि १०० होते हैं! उसने कहा कि हमारी यह चार भैंसें है वह छोड़ देंगे आपको अगर ५० और ५० मिलकर ८० न होते हों! अब स्त्रीने भी सुन लिया कि पंचायतमें ऐसा हुआ। पटेल पूछता है कि तू उदास क्यों है, उसने कहा कि तेरी करनीका फल है। मेरी चार भैंसें चली जायेंगी, बच्चे क्या खायेंगे! कहांसे अन्न खरीदेंगे। पटेल कहता है कि तू बेवकूफ है! पंच सारेके सारे कह रहे हैं कि ५० और ५० मिलकर १०० होते हैं, जब हम अपने आप कहें कि ५० और ५० मिलकर १०० होते हैं तो ही तो भैंस पावेंगे, देखो कौन भैंस ले पावेगा।

यह जीव भी जानता है कि संसारमें अन्य कोई हित नहीं, कोई शरण नहीं है, किसीके मोहसे गुजारा नहीं होगा। इसी कारण प्रभूका ध्यान भी करते हैं, धर्मपालनके परिश्रम भी करते हैं। सब कुछ करते हैं मगर भीतरसे आत्मा इस बातको माननेके लिए तैयार नहीं होती है कि दो मिनट भी ऐसा उपयोग बना लें कि मैं जगतके अन्य प्राणियोंके समान ही सामान्य वस्तु हूं, केवल देखना, जानना उसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सामने रहे, दो मिनटका भी उपयोग बन जाय तो स्वयं ही इस आनन्दको स्वरूपमें पाकर आनन्दसे तिरेगा, सारा क्लेश निकल जायगा। क्लेश कुछ है ही नहीं, किसी खोंचा ढोने वाले आदमीसे तुम कह सकते हो कि वह मुश्किललसे पेट भरता है सो दुखी है किन्तु धनिकों व आफिसरोंको तो यह गरीबी नहीं फिर वे क्यों दुखी हैं, वे बैठे बैठे कल्पनासे ही दुखी हो रहे हैं, इसको यह कहा इसने नही माना, वह नहीं हुआ, जैसे सोचो कि मैंने नौकरसे कहा कि तू झाड़ू दिया कर, नौकर भी स्वतन्त्र आजाद जातिका है ! नहीं किया तो तुम्हारा क्या घटा ! बाहरसे चाहे काम करना पड़े कोई भी क्रोध करना पड़े पर अन्तरमें समझाना चाहिये कि मेरा संसारमें कुछ भी नहीं है, दूसरेसे मेरा लाभ हानि नहीं है ! बैठे बैठे दुखी हो रहे हो ! गरीब बेचारे तो परिश्रम कर दुखी होते हैं, पर यह तो बैठे बैठे दुखी हो रहे हैं ! क्या कष्ट है। विकल्पका कष्ट ! यह ऐसा नहीं चल रहा ! यह ऐसा नहीं कर रहा ! मेरा इस पर अधिकार है ! अरे भाई तू कहीं का मालिक नहीं। तू अपना मालिक बन, जगतके किसी पदार्थपर तेरा अधिकार नहीं ! मैं अमुक कार्य करता हूं ! मैं अमुक हूं ! अहंकार अहंकारमें ही दुनिया बर्वाद होती है। क्या करते हैं कि बढ़िया भोजन बनाया ! आपने थोड़ा खाया पर १० को चखा दिया ! उसने समझा कि १० को भी पता चल जाना चाहिए कि यह कैसा भोजन करता है। लोग ऐसे होते हैं जो अहंकारसे अपना तीव्र अहंकार भरे रहते हैं ! खुद ही खाते हैं वे चाहते हैं कि मैं ही सारा भोग भोग लूं उनके कार्य किसी के लिए भी किए जावें वे सब अहंकार के हैं।

मैं चैतन्य स्वरूप मात्र हूं, मेरा करने व भोगनेका कुछ भी स्वभाव नहीं है। ऐसा निश्चय करले तो भगवान होनेके मार्गको प्राप्त करले इसलिए यह समझोकि मैं ज्ञानमात्र हूं ! सर्व जीवोंके समान हूं ! मैं सबसे अलग कुछ नहीं रहा ! इसलिए सबमें अपने आपको समाया समझो, यह स्थिति शुद्ध योगकी है ! जहां अहंकारका भी विकल्प न हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



वह अहंकार रहित अवस्था है अपनेको किसी रूपमें भी यह मैं हूं ऐसी मान्यता रहे तहां तक अहंकारकी मात्रा है। ऐसा निरहंकार तो स्वयं आत्मा है। अहंकार तो औपाधिक पर्याय है, विनाशीक चीज है, निर्मूल चीज है। आत्माके किसी शक्तिके स्वभावसे अहंकार नहीं होता इसलिये तो अहंकार आत्माकी चीज नहीं और कर्मोंमें अहंकार भाव आनेका माद्दा ही नहीं अतः अहंकार मर्मकी चीज नहीं। यह तो कर्मोदयके निमित्तसे होने वाली आत्मामें एक झलक है। इस विभावरूप झलकको देखकर चैतन्य स्वभावका ही अनुगम करना चाहिये। ऊपर तैरने वाले कुतत्त्वसे दृष्टि हटाकर अन्तरमें शाश्वत प्रकाशमान आधारभूत मर्मका अवलोकन करना चाहिये। सुख यहीं अन्तरमें मिलेगा सुखका ठौर अन्यत्र कहीं नहीं है। अन्यत्र सुख खोजना ही क्लेश है।

वाञ्छन् गच्छन् त्यजन् हर्षन् शोचन् कुप्यन्न वर्तते।
यत्रास्ते तत्स्वसाम्राज्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥१-२१॥

मैं वह आत्मतत्त्व हूं जहां मेरा स्वयंका सहज अनादिसिद्ध साम्राज्य है। वह मैं न तो इच्छा करता हुआ वर्तता हूं, न किसी वस्तुको ग्रहण करता हुआ हूं, न किसी वस्तुको छोड़ता हुआ हूं, न हर्ष करता हूं, न शोक करता हूं और न क्रोधादि करता हूं वह मैं आत्मतत्त्व हूं। इच्छाका मुझमें स्वभाव ही नहीं है। इच्छा तो प्रकृतिके उदयका निमित्त पाकर चेतनभूमिकामें भासित होती है। यही बात हर्ष, शोक, क्रोध आदि विकारोंकी है। बाह्य पदार्थका तो मुझमें अत्यन्ताभाव है उसका ग्रहण करना व त्याग करना तो दूर ही रहो। मैं इनको किसी रूपमें नहीं वर्तता हूं। मैं तो ज्ञानानन्द स्वभावमात्र हूं। निजस्वभावमें स्थिर होनेमें कोई क्लेश नहीं है।

जगतके प्राणियोंको जितना भी क्लेश है वह है सारा रागका क्लेश। जब हम क्लेशको दूर करना चाहें तब हमें ऐसा सोचना चाहिये कि हमें रागको मिटाना है। रागको मिटाया तो क्लेश मिट गया। राग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



नहीं मिटा सकें तो क्लेश नहीं मिट सकता। तो फिर रागको मिटानेका उपाय क्या है? उसके मिटानेका उपाय है रागरहित अपने स्वभावको देखना। और भी उपायोंसे राग थोड़े कालको दब तो जायगा परन्तु मिटेगा नहीं। जैसे तपस्या की, पूजा की, तीर्थ किये सो भैया इन उपायों से राग दब तो जायगा परन्तु राग मूलसे नष्ट न होगा। राग मूलसे नष्ट होगा तो मात्र ज्ञानसे, रागरहित स्वभावकी दृष्टि बनानेसे। मैं ज्ञान स्वरूप हूं, ज्ञानमय हुं, ज्ञानको छोड़ कर मैं अन्य कुछ भी नहीं हूं। उस ज्ञानमें ज्ञान ही है, ज्ञान जाननेका ही स्वरूप है, इससे अन्य कुछ नहीं।

यहाँ आज सब लोग जो अपनेमें राग, द्वेष, क्रोध आदि किया करते हैं, मित्र, कुटुम्ब, धन, वैभव आदि देखते हैं वह सब मोहकी लीला है। वस्तुतः ज्ञानमें ये नटखट कुछ नहीं हैं ऐसा मात्र ज्ञान स्वरूप है। अपनेमें केवल ऐसा ही ज्ञानका स्वरूप देखना। जानना मात्र उसका काम है। जानना यह कि यह सारा कुटुम्ब है, जानना यह कि यह इज्जत है, जानना यह कि यह दुनियां है। जान लो, सब जान लो। जाननेके अलावा और कुछ विकल्प न करो। जाननेके अलावा और कुछ मैं नहीं हूं। यही तो मोह है और यही प्रकृतिका विकार है कि जिस ज्ञानसे जानते उसकी तो खबर नहीं और बाहर रमते हैं, किन्तु इस जाननेके बारे में यदि और अधिक सूक्ष्म जाननेका कुछ साहस करे और देखे किसमस्त चराचरका पीछा करनेपर भी व्यक्तिका परमाणु मात्रभी उसका नहीं है तो अपने आपमें आपका प्रकाश मिल जावेगा।

वास्तवमें अपने आपको जानना ही तो ज्ञान है। मैं मात्र ज्ञाता, द्रष्टा हूं, ऐसा अनुभव करनेसे ही कर्म सब दूर होंगे, विपत्तियां सारी दूर होंगी। विचार करें, विपत्तियां दुनियांमें हैं कहां? ये जितने बाह्य पदार्थ हैं, कोई मनुष्यके आधीन नहीं सो जब वह पदार्थ हमारी इच्छा के माफिक नहीं होता तो दुख हो जाता है कि यह माफिक नहीं चला, यह उसकी तरह नहीं बना, बस इसी वितर्कके कारण विपत्तियां हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



प्रथम तो तेरी इच्छा भी तेरे आधीन नहीं है। इच्छा औपाधिक है, पराधीन है। राग प्रकृतिका उदय होनेपर चेतनभूमिकामें एक भासना होती है वही इच्छा है। इस इच्छाका वास्तवमें कोई अधिकारी नहीं हैं। इच्छा न मेरा स्वभाव हैं और न मेरा सहजसिद्ध परिणमन है। इस रूप वर्तता हुआ जो कोई है वह मायातत्त्व है, मैं आत्मतत्त्व उस रूप नहीं। जब इस निकटतम विकारका भी मुझमें सत्त्व नहीं है तो अन्य सर्व बाह्य पदार्थोंकी तो कथा ही क्या। किसी भी बाह्यको न तो मैं ग्रहण करता हूं और न मैं छोड़ता हूं। उनमें तो मैं कुछ कर भी नहीं सकता। त्रिकालमें भी बाह्य पदार्थ अपने नही हो सकते। बाह्य तो बाह्य ही है। उसका तो कोई भी अंश मुझमें नहीं आता। बाह्य पदार्थोंसे कैसे विपत्तियां आईं। विपत्तियां तो उस मोहीके अन्तरमें ही उठती हैं। जो हम विकल्प करते हैं वही क्लेश है, यह ध्रुव सत्य है। जैसे कोई मानता हो कि उसके पास धन कम हैं, यह विपत्ति है। धनका कम होना विपत्ति नहीं है। धनमें अपना हित समझकर धन कम है ऐसा विकल्प करना विपत्ति है, यह विपत्ति ज्ञानसे दूर होगी। अज्ञानसे आई हुई विपत्तिका नाश ज्ञानसे ही होगा। इसका अन्य कोई उपाय नही है। जैसे किसी पुरुषको किसी बातपर भ्रम हो जाय तो वह भ्रमसे दुखी रहता है। उस दुखका उपाय केवल भ्रमका नाश है। भ्रम दूर नहीं होगा तो दुखका नाश न होगा। जैसे कि स्वप्नमें देखी हुई खोटी बातसे जो दुख उत्पन्न होता है उस दुखका नाश नींद खुल जानेमें होता है, उसका और उपाय नहीं है। जैसे मान लो आपको नींदमें ऐसा स्वप्न आया कि जंगलमें घूम रहे हैं, भयानक जंगलमें पहुंच गये हैं, वहां बहुत से जानवर है और एक सिंह सामने आ रहा है, अपना ही कुशल नहीं, यह जान पड़े कि वह चला आ रहा है मुंह बाये खाने आ रहा है। स्वप्नमें यदि ऐसी बात देखते हैं तो कितना क्लेश होता है। उस क्लेशको मिटानेका और कोई उपाय है क्या? बिजलीका पंखा चला दिया जाय तो क्या वह क्लेश दूर हो जायेगा या वहां पर माता पिता बैठे हों तो उनसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


क्लेश दूर हो जायगा ? उस क्लेशको दूर करनेका इसके अलावा और कोई उपाय नहीं कि उसकी नींद खुल जानी चाहिये। नींद खुली कि देखा न जंगल है न शेर है। बस उसे आराम मिला।

इसी प्रकार जगतके प्राणी मोहकी नींदमें सो रहे हैं और उनको नींदमें स्वप्न दिख रहे हैं कि यह नगर उसका है, यह दुकान उसकी है, यह परिवार उसका है, यह दौलत उसकी हैं, ये मित्र जन उसके हैं, उसकी इतने लोगोंमें इज्जत है इत्यादि नाना स्वप्न दिख रहे हैं। इन्हीं बातोंको देखनेसे पल-पल पर कष्ट हो रहा हैं। अगर इज्जतका स्वप्न देख रहे हैं तो इज्जत संभालनेका क्लेश, इज्जत बढ़ानेका क्लेश, अगर इज्जतमें कुछ धक्का लगा तो उसका क्लेश। धनका स्वप्न देखते हैं तो एक तो धनके संभालनेका क्लेश, धन बढ़ानेका क्लेश और धनमें हानि पड़ती है तो उसका क्लेश। किसी भी प्रकारके विकल्प जो बनते रहते हैं उनमें प्रारम्भमें क्लेश, रक्षामें भी क्लेश और विनाश में भी क्लेश ही है। इस क्लेशको मिटानेका कोई उपाय है क्या? धनसे होनेवाले दुखको दूर करनेका क्या यह उपाय है कि उसे दुगुना कमा कर रख ले? नहीं इससे भी यह क्लेश नहीं मिटेगा। क्या इज्जतसे होनेवाले क्लेशको दूर करनेका यह उपाय है कि किसी प्रकार इज्जत को दुगुना बना ले ? नहीं, यह भी उपाय नहीं है। उपाय केवल एक ही है कि मोहकी नींद तोड़ दे, अपने सत्यस्वरूपको देख ले क्योंकि मेरा तो केवल ज्ञान ही स्वरूप है। ज्ञानके अतिरिक्त तो कुछ भी नहीं। मेरा लाभ ज्ञानसे ही है।धन, इज्जत परिवार आदि से मेरा लाभ नहीं है बल्कि हानि ही है। यही ज्ञान जब ज्ञानवृक्ष बनकर बढ़ता है, फलता है, तब अनुपम आनन्द होता है।

विकारभाव पाप है। इच्छा हो, हर्ष हो, शोक हो, क्रोध हो, परके ग्रहणका विकल्प हो, परके त्यागका विकल्प हो, मानादिक हो सभी ये विकार हैं, पाप हैं। तथा इन पापोंसे भी बढ़कर महापाप है इन विकारोंमें आत्मबुद्धि करना, इन्हें ही स्वयं अपना समझना, इन रागा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



दिक विकारों में राग करना। इच्छा करता हुआ ही वर्तनेवाला मैं हूं, परका ग्रहण व त्याग करता हुआ ही वर्तनेवाला मैं हूं, क्रोध मानादिक करता हुआ ही वर्तनेवाला मैं हूं, इसप्रकारके विकारोंमें आत्मीयताका होनेवाला भाव महापाप है। देखो—दार्शनिक मैदानमें, जब रागद्वेषादि भावोंका परीक्षण किया जाता है तो कुछ भाई यह उत्तर देते हैं कि रागादि भाव पुरुष (आत्मा) में नहीं होते, ये प्रकृतिके विकार हैं, प्रकृति की चीजें हैं। जब तक यह भ्रम रहेगा कि ये रागादि मुझमें हुए तब तक संसार है। तब आगे यह भी जानना चाहो कि भ्रम किसमें है? क्या पुरुषमें भ्रमभाव हुआ है या प्रकृतिमें भ्रमभाव हुआ है। यदि प्रकृतिमें भ्रमभाव होनेकी बात कहो तो जो भ्रमी है वही दुःखी हो, तब तो प्रकृति दुःखी है, मोक्ष प्रकृतिका कराओ। यदि पुरुषमें भ्रमभाव होने की बात कहो तो रागादि पुरुषमें न हुए तो न सही, किन्तु भ्रमरूपी महापाप तो पुरुषमें हो गया। सर्व आपदाओंका मूल यह पर्यायबुद्धि है। यही भ्रमजाल है। सो अब इच्छा, विकल्प, क्रोध, शोक आदि किसी भी पर्यायमें आत्मबुद्धि न करो। मैं तो वह हूं जहां मेरे ज्ञान, आनन्द आदि निजी वैभवोंका साम्राज्य है।

वास्तवमें मैं ही ज्ञेय हूं। ज्ञेयको ही जानता हूं। जाननेके लिये ही जानता हूं। जानना मुझमें ही जानना है। इससे आगे मेरा कुछ और कर्त्तव्य नहीं है, ऐसी भावनाके बलपर जो अपने आपमें रम जाया करते हैं, उन्हें जो अनुपम आनन्द मिलता है वह न तो इन्द्रको नसीब है और न महाराजाओंको। वह तो प्रभु जैसा आनन्द है इसी आनन्दमें सामर्थ्य है कि कर्म कट जायेंगे। तपस्यासे अथवा अन्य बातोंमें भी वह सामर्थ्य नहीं है जो सामर्थ्य सम्यक् ज्ञानमें है। इसीलिए यदि किसी मनुष्यको दुख दूर करना है तो वह निश्चय करले कि दुःख केवल रागमें है जिस किसी पदार्थमें जो राग है उसीमें दुःख है तथा दुःख दूर करना है तो तुरन्त राग को दूर कर दे। राग करना मूर्खता है। कारण जिस वाह्य पदार्थसे राग करते हैं वह अपने नहीं हैं। उनका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


रंच भी सम्बंध नहीं है। क्या कोई बाह्य पदार्थ तेरे द्वारा आया है? क्या कोई बाह्य पदार्थ तेरे साथ आयगा? क्या कोई भी बाह्य पदार्थ जिसे कोई कितना भी चाहे क्या उसके साथ जायेगा? क्या कोई बाह्य पदार्थ उसके सुख दुखमें यहां या कहीं भी साथी होगा? यह केवल आत्मा ही है और अपनेमें ही बना रहता है, इतना तो ही इसका मर्म है, इसके आगे इसकी कोई गति ही नहीं। राग करना निपट अज्ञान है कि नहीं? किससे राग किया जाय? भगवान और आत्मा में अन्तर क्या है? केवल राग होना या न होना, यही अन्तर है। जहां राग नहीं है वहां केवल हैं भगवान और जहां राग है वहां है केवल प्राणी। राग करना तो व्यर्थ का काम है क्योंकि राग करनेसे हाथ लगता तो कुछ नहीं, अर्थात् आराममें तो कोई आता नहीं। जो वस्तुके स्वरूपका ज्ञान करके राग छोड़ देता है वह भगवान बननेके समान है और जो वस्तुके प्रति राग बढ़ाता है, राग रखता है, वह संसारमें धुलनेका काम करता है। आत्मन् तू अपने आपको ही स्वयं द्रष्टा देख या देखने वाला जो है वही तू है। जो जानने वाला है वही तू है। जानने से आगे न तू है, न तेरा काम। ऐसा सोचकर चिन्ताको दूरकर, विकल्पोंको दूर कर आरामसे कुछ ठहर। आरामके माने हैं प्रभू राम आ। चैतन्य महाप्रभू मेरे उपयोगमें आ। जब जब आप मेरे उपयोगमें रहे, मैं आराममें रहा। जब तू मेरे उपयोगसे हटा तो मैं विषय कषाय रूपी शिकारियोंके चक्करमें पड़कर शिकारियोंके चक्करमें पड़े हुए हिरनके बच्चेकी भांति विह्वल हो जाता हूं। जिन बाह्य पदार्थोंसे मैं घिरा हूं, वे मेरे लिये शिकारीवत् हैं। एक तुम मेरे उपयोगसे हटे कि मेरा आराम चला जाता है।

आराम भगवान स्वयं किसीको नहीं दिया करते। भगवान तो न किसी पर प्रसन्न होते हैं न किसी पर क्रुद्ध होते हैं। यदि वे ऐसा करने लगें तो वह भगवान न रहे, हमारी तरह अनाथ प्राणी हो गये। कैसा ही कोई भक्त हो उसपर भगवान प्रसन्न नहीं होते और कैसा ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कोई पापी हो उसपर भगवान क्रुद्ध नहीं होते। हाँ भगवानको यह ज्ञान रहता है कि यह भक्त-आत्मा कितना पवित्र है या यह पतित आत्मा है। परन्तु वे न तो प्रसन्न होते हैं और न क्रुद्ध होते हैं। और सच पूछो तो जो कर्ममुक्त भगवान हैं उनको प्रसन्न नहीं किया जा सकता। हां उसकी प्रसन्नता अपने आपमें ज्ञानके बलपर निर्भर है वह भी है अपने सत्य स्वरूपसे। यह ज्ञान जो कि जगतके सब पदार्थोंसे न्यारा केवल अपने स्वरूपमात्र, परम ज्योतिर्मय, केवल ज्ञानमय, विशुद्ध तत्त्व है वही सार तत्त्व मैं हूं। ऐसा अनुभव वह अपनेमें करे तो उसे परम प्रसन्नता होगीं। जब मेरे यहां मेरे भगवान मेरे प्रभू प्रसन्न हो गये तब क्या चाहिये ? उससे बढ़कर और है क्या ? इसलिये हे आत्मन्! तू अपनेको रागरहित देख। मेरा तो राग करनेका स्वभाव ही नहीं। तेरा भी राग करनेका कोई काम नहीं। तू तो ज्ञानस्वरूप है, तू तो जानता चला जा, सब कुछ जानता चला जा। जान कर रह, जाननेसे आगे मत बढ़, तो तेरे सारे क्लेश समाप्त हो जांयगे और तू अपनेमें अपने आप सुखी हो जायगा। सुखी होनेका मूल उपाय यही है कि रागको नष्ट कर। राग करके कष्ट दूर नहीं हो सकते। सबसे बड़ा विकट राग तो यही है कि अपनेको नानाविकारों रूप मानना। परमार्थतः मैं शुद्ध ज्ञायक स्वरूप हूं। पर पदार्थका प्रतिभास होता है इससे परका न कोई सम्बन्ध है और न मुझमें परकी कोई करतूत है। यह तो ज्ञानका सहज विलास है। ज्ञान ऐसे ही रूपको लिये हुए है। मैं इसी सहज ज्ञानमात्र हूं सो ज्ञान द्वारा ज्ञानमय निजस्वरूपमें ज्ञानके लिये ज्ञानमात्र वर्तकर स्वयं सुखी होऊं।

यदाज्ञता तदासीन्मे प्रीर्भीगे स्वविभ्रमात् !
दीनवज्ज्ञोऽपि धावानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२२॥

यद्यपि यह जीव ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण है तब भी अपने इस स्वरूपको न जाननेके कारण इसको अपने आपमें संतोष तो मिलता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



नहीं तब बाहर संतोष ढूढ़ता है किन्तु बाहर कैसे संतोष मिले। इसका सुखी होनेका स्वभाव है। भीतर तो सुखी होता नहीं, तो सुख बाहरके पदार्थोंमें ढूढ़ता है। बाहर सुख ढूढ़नेमें त्रिकालमें भी सफलता नहीं प्राप्त होगी, क्योंकि बाहरके जितने भी पदार्थ हैं वे सब अपनी अपनी सत्तामें हैं, वे अपनेसे बाहर कुछ नहीं करते उनका उनसे बाहर कुछ नहीं आता तब उनसे आशा करना विपत्ति ही तो है। जब तक यह कुज्ञान था कि पर पदार्थसे उसे सुख मिलेगा तब तक भोगोंमें प्रीति थी किन्तु अब स्वयं यह जान लिया कि दूसरे पदार्थसे सुख नहीं मिलता, सुख स्वरूप हम ही तो हैं जब यह ज्ञानवाले हुये तब उनके भोगमें प्रीति नहीं रहती। किसी धोखावाली जगहमें प्रीति तब तक होती है जब तक उस विषयका सच्चा ज्ञान नहीं होता है परिवारका आज्ञाकारी होना सैकड़ों हजारों कोशोंमें यश और कीर्तिका फैलना यह सब माया है और इनमें फसे तो आत्मीय आनन्दसे हाथ धोया। जैसे अन्य लोग कहा करते हैं कि किसी ने जब बड़ी तपस्या किया तो इन्द्रको डर लगा कि कहीं उनका आसन न छुड़ा ले यह तब कोई सुन्दर अप्सरा उसने भेजी कि वह रूप हाव भाव नृत्य दिखाकर नाना उपाय कर ऋषिको चिगा दे। अब देखो वे सब रागके कृत्य अपने देखनेमें बड़े अच्छे लगते हैं परन्तु यह सब धोखा है, उस धोखेमें गये तो सब तप श्रम उनका बादमें खतम हो जायगा।

इसी तरह आत्मामें उत्कृष्ट आनन्द भरा है अनन्त आनन्द स्वभाव है उस आनन्द स्वभावमय परमात्मतत्त्वको अपने स्वभावके दर्शन द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। स्त्री पुरुष भले ही उसे मिले तो क्या मिले, वे स्वयं दीन आत्मा हैं उनसे हममें दुख ही होता है। कुटुम्ब अच्छा मिला तो क्या मिला। तुम्हारी तो आत्मा ही साक्षात भगवान है, यह स्वयं वैभव है। यह माया कुछ नहीं, केवल भूल है। अपने स्वभावकी उपासनामें लगे और इन भोगोंसे दृष्टि हटे तो वहां जानना ही जानना है। यहाँके पदार्थतो यों ही मिले हैं,और यों ही जावेंगे। एक कथानक है कि एक चोरने किसी सेठके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



यहाँ से घोड़ा चुरा लिया और बाजारमें खड़ा कर दिया। ग्राहक बोलते हैं—बोलो क्या दाम है इसका ? उसने कहा ६०० रुपया है। तिगुना दाम बताया सो सब लौट गये। इस तरह दशों लौट गये ग्यारहवीं बार दूसरा आया उसने भी दाम पूछा तो उससे भी कहा ६०० रुपया है। उन्होंने समझ लिया कि इसने चोरी की है। ग्राहक बोला इसमें ऐसी क्या बात है, चोर कहने लगा इसकी चाल बढ़िया है। ग्राहक चाल देखनेके लिये घोड़ेपर बैठ गया मिट्टी का हुक्का पकड़ा दिया। उसको कहा जरा पकड़ो तो और आप घोड़ेपर बैठे। ग्राहक घोड़ेको बहुत दूर ले गया, और उड़ा ही ले गया ! दूसरे लोग आये कहा भाई तुम्हारा घोड़ा बिक गया, हाँ बिक गया, कितनेमें बिक गया, बोला जितनेमें लाये थे उतनेमें बिक गया पूछा मुनाफा क्या मिला, कहा, तीन आनेकी मिट्टीका हुक्का।

इसी तरह ये सारे पदार्थ एक पैसासे लेकर खरबों रुपया तक यह साराका सारा मुफ्तमें मिला है चीज तो न्यारी है, तो भैया यह सब पाया है सो मुफ्तमें ही मिला और मुफ्त ही में जायगा हाथ कुछ नहीं रहेगा। क्या भाव बना कि यह मेरा है परिवार मेरा है ऐसा उन्होंने परिणाम बना लिया, परन्तु ज्ञानी पुरुष जानता है दुनियामें मिला मुफ्तमें यह है और मिटेगा भी मुफ्तमें यह, कोई साथमें नहीं रहेगा पर-भाव मिटनेको आये हैं और मिटनेमें ही जायेंगे। कुछ मुनाफा मिला कि नहीं मिला, न कुछ लिया न कुछ गया कहते हैं कि मिलेगा क्या ? पाप का हुक्का। जो जो मिला है वह नहीं रहेगा किसी के पास नहीं रहेगा अरबपती, लाखपतीके पास नहीं रहेगा पंडितके पास भी नहीं रहेगा पहलवानोंके पास भी नहीं रहेगा पर जो पाप पुण्य जिन्दगीमें किया वह साथ रहेगा उसके अनुसार सुख दुखके साधन सब मिलेंगे।

भैया जब अज्ञान था भोगोंके प्रति प्रेम था, ठीक है, पर अब तो ज्ञान है, तू तो एक चेतनामय स्वरूपमात्र सर्वस्व है, केवल ज्ञानमात्र है, सबमें मिला, व सबसे जुदा एक आनन्दमय पदार्थ है, सर्व साधारण एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



पदार्थ है, जिसका नाम भी नहीं है, जिसका भाग ही नहीं है, परन्तु एक जो पदार्थ है उसे तो भूल गया और आगेकी दुनियामें दृष्टि रख कर इस मायाकी दुनियामें लग रहा है और आनन्दके स्वप्नोंको सत्य समझ रहा है इसीसे दुख होते रहते हैं। अब तक तुमने कितने भव व्यतीत कर डाले अब केवल एक इस भवको ही भोगरहित व ज्ञान सहित बिताओ कोई हर्ज नहीं। यह एक भव जो अब पाया है तो यह समझ लो कि इसको पाया ही नहीं है, पाया है तो अपनेमें गुप्त रहकर ही धर्म साधनके लिये पाया समझो। ऐसा ही निर्णय कर अनन्त भवों भोग पाते रहे तो एक भव नहीं सही, क्या मिट जायगा बल्कि मुक्तिका मार्ग मिल जायगा, शान्ति और आनन्दका मार्ग मिल जायगा फिर तू सदाके लिय सुखी हो जायगा एक मोहको छोड़ दे तो सदाके लिये तेरे क्लेश मिट जांयगे।

हे आत्मन् तू ज्ञान स्वरूप है तेरेमें जन्म नहीं, मरण नहीं तू तो एक ज्ञान स्वभावमात्र है इस स्वभावमें न जन्म है न मरण है न क्लेश है न दुख उस तेरे स्वभावमें कुछ भी तो विकार नहीं है। तू अपने इस स्वरूप कोदेख, सबसे निराला बन, केवल तू ही यह स्वयं आत्मज्ञानमात्र है, आनन्दमय है कोई झगड़ा नहीं, कोई विवाद नहीं उस स्वरूपको देख, सबसे निराला बन। उस स्वरूपसे जरा भी हटे, जरा भी सिथिलता डाल दी तो गल्तियां बढ़ती चलीं जायेंगी। जहां कहीं सवालके हल करने में पहले पहले कोई गल्ती कर दे तो वह गल्ती बढ़ती ही है इसी तरह स्वयं में गल्ती करते आये तो यह गल्ती बढ़ती ही चली जाती है। जितना भी यह क्लेश होता है वह तेरे भ्रमसे होता है जब यह भ्रम होगा कि मैं कुछ नहीं हूं किन्तु दूसरेके बल पर मेरा जीवन रहता है, दूसरेके बलसे हो सुखी होता हूं, दूसरेके बलपर ही मेरी जिन्दगीका ठौर होता है, जब ऐसा मिथ्याज्ञान तेरेमें आयेगा तो अपने आपमें कहीं संतोष कैसे पायगा। जैसे किसी से कहूं कि तुमको जो कुछ चाहिये सो ले लीजिए २४ घंटे बाद दूंगा, तो वह २४ घंटे उसके पीछे सोच

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सोचमें ही बरबबाद होगा, उसको १ घंटा भी सुख न हो सकेगा उतनी बातकी आशामें उसको इस २४ घंटेकी परेशानी हुई अब क्या ठिकाना जब २४ घंटे पूरे होंगे तब कहा कि बोल क्या चाहता है तो कहा माफ करें अब जब तक मांगा भी नहीं, तो कल्पनामें २४ घंटे खराब गये और अब मैं तुमसे ले लूंगा कुछ, तो जिन्दगी खराब हो ही जायगी।

कोई कहता है कि जीव हवा है, कोई कहता है कि साँस है, अनेक रूपमें इस जीवकी कल्पना होती है। परन्तु ऐसा कुछ नहीं है कि हवा है, या सांस है आया सो आया गया सो गया, ऐसा कुछ नहीं है। यह जीव तो ज्ञानानन्दघन पदार्थ है, केवल ज्ञानमात्र है, भावमात्र है केवल चैतन्यभावमात्र है, ठोस है ज्ञान घन व आनन्दसे परिपूर्ण है, धोखेकी कोई बात नहीं जो उसको सार रूपमें नहीं पकड़ता उनके लिये धोखा है। शरीरमें जीवका बना रहना क्षणिक है, किन्तु शरीर जिन परमाणुओंसे रचा हुआ है न तो वे परमाणु क्षणिक हैं और न यह जीवतत्त्व भी क्षणिक है। जीव क्षणिक नहीं वह तो ठोस पदार्थ है वह आनन्द घन है, मजबूत तथ्य है उससे बढ़कर संसारमें कुछ है ही नहीं जो इसको समझ लेता है वह आनन्दमग्न हो जाता है। जो नहीं समझ पाता वह जगतमें, सब जगह ठोकर खाता है। बाह्य पदार्थकी हानिसे अपनी हानि समझता है बाह्यको अपना सब समझता है। अकिंचन भाव रहा तो यह आत्मा वैभवपूर्ण है। इसका और कुछ है ही नहीं, जो बाहरमें अपना कुछ मानते हैं वे ही परकी उधेड़बुनमें लड़ेंगे। मेरा कुछ है ऐसे भावमें जो बहता चला जाता है वह तो टोटेमें रहता है और जो उसका कुछ नहीं है ऐसा निर्णय करके सबसे पृथक होकर केवल आत्मारामसे नेह लगा लेते हैं इनके लिये सर्वोत्कृष्ट वैभव प्राप्त होते हैं इस महत्त्वसे ही परमात्माकी हम पूजा करते हैं, बतलाओ क्या है उनके पास दूसरी-चीज, एक पैसा नहीं, एक धागा नहीं, एक अनाजका दाना नहीं, जरा सा कुछ नहीं। खराब चीज उनके पास कुछ नहीं है तभी आप उनकी उपासनामें लीन होते है। भैया बाह्य पदार्थोंकी जिद न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


करो जो कर्म आपने किया है जो गति ठन गई है सारी बातें यह तैयार कर ली हैं मरणके बाद, तो उसमें अब बस नहीं चलेगा, मैं एक-इन्द्रिय नहीं होना चाहता हूं ऐसी जिद न चलेगी मरते समय अगर कीड़े मकोड़े बनना है तो मैं नही बनना चाहता हूं यह जिद न चलेगी इस भवमें चाहे पुणयवश कुछ भी थोड़ी जिद कर लें। जैसे किसी ने मना भी कर दिया तो यहाँपर जिद चल जाती है, अन्यायसे जिद चल जाती है। कब तक ?जब तक पुण्य साथ दे रहा है, मगर मरणके बाद की भी बात सोचो—भैया अपना स्वरूप देखो मैं तो इस जगतका सबसे निराला जीव पदार्थ हूं यदि यह सत्य स्वरूप उपयोगमें बसा लूं तो अपनेमें अपने आप स्वयं सुखी हो सकूंगा।

सुखका घातक तो अज्ञानभाव है। अज्ञानका अर्थ है वस्तुके यथार्थ स्वरूपका पता न होना। वस्तु जगतमें अनन्त हैं। अनन्त तो जीव हैं, अनन्त पुद्गल हैं, एक धर्म द्रव्य है, एक अधर्म द्रव्य है, एक आकाश द्रव्य है, असंख्यात काल द्रव्य हैं। इनमेंसे किसी भी एक पदार्थको देखें-प्रत्येक पदार्थ अपनी अपनी सत्तामें है, अपने अपने ही प्रदेशोंमें अपने अपने ही स्वरूपमें अपनी अपनी एक अवस्थाका उत्पाद करता है व उसी समय पूर्व एक पर्यायको विलीन करता है और वह सत् स्वयं वही का वही बना रहता हैं। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ निज निज त्रिगुणात्मक हैं। इस कारण किसी भी पदार्थका किसी भी पदार्थके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु इस वस्तुमर्मका जिन्हें ज्ञान नहीं है और इसी कारण सम्बन्धबुद्धि, कर्तृत्वबुद्धि, भोक्तृत्वबुद्धि, आदि रूप अवगम है सो चूंकि जीव तो किसी न किसी पदमें रमनेका काम करेगा ही, लो यों अब वह भोगोंमें रमने लगा। भोगोमें हित बुद्धि की इसी कारण दीन पुरुषकी भांति बाहर बाहर ही दौड़ लगाता रहता है यह। हाय बड़े कष्टकी बात है कि ज्ञानस्वभावमय होकर भी मैं दीनकी भांति पर पदार्थोंमें दौड़ लगाता हूं, नाना आशायें रखकर। अब ऐसा नहीं होगा। जब तक मेरे अज्ञान था तब तक मेरे भोगोंमें प्रीति थी अब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अज्ञान मिटा तब अब अन्यत्र मैं नहीं दौड़ूंगा । मैं तो अब अपने आपमें ही रमकर स्वयं सुखी होऊंगा ।

ज्ञातृत्वं मयि सर्वेषु स्वायत्तं साम्यसंयुत्तम् ।
कस्य कः ज्ञातृतां दृष्ट्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१–२३॥

जीवका स्वरूप है ज्ञातापना, ज्ञानस्वरूप होना, प्रतिभास्वरूप होना । वह ऐसा स्वरूप है कि समता तो उसमें अपने आप ही भरी हुई है, केवल जानना जो है उसमें राग द्वेष नहीं होता । राग द्वेष होता है तब जब जाननेसे आगे बढ़ता है केवल जाननेसे राग नहीं, द्वेष नहीं । ऐसी समतावाला ज्ञान आत्माका जो स्वरूप है वह स्वाधीन है, जो स्वाधीन स्वरूप है उससे संतोष व आनन्द उत्पन्न होता है और जो स्वाधीन नहीं है, पराधीन है उसकी उपासना विपदा उत्पन्न करती है । लोकमें भी देखो जो बात पराधीन है उसकी इच्छासे विपदा है, जो अपना स्वाधीन है उसमें उतनी विपदा नहीं । यद्यपि लोकमें बाहरी चीज कोई स्वाधीन नहीं सब पराधीन है तबभी एक मोटा दृष्टान्त दिया । पराधीनतासे दुख है, सब पराधीन है, शरीरका मिलना पराधीन है और कषाय विषयका होना पराधीन है, धन वैभवका मिलना भी पराधीन है । आत्मा ज्ञानस्वरूप है जो ज्ञान स्वभाव है उसके बसकी बात नहीं है कि कषाय कर ले । कषाय उत्पन्न होती है वह भी कर्मोदयकी आधीनता है । शरीर मिलता है वह कर्मके आधीन है । स्वाधीन चीज तो कुछ मिलेगी ही नहीं पर पदार्थमें कुटुम्बके योग हैं, वे भी अपनी न्यारी सत्ता वाले हैं; वे अपनी अपनी परिणतिके आधीन है । मित्रजन हैं जिन्होंने कुछ उपकार किया वे भी पराधीन ही हैं । यह सब कुछ मेरा नहीं, मेरा धन तो अपना अनन्त आनन्द चैतन्यस्वरूप सत्यकी दृष्टिमें कोई धोखा नहीं, खतरा नहीं, कोई क्लेश नहीं । आत्मस्वरूपकी दृष्टिसे जो चिग जाते हैं उनको तो वैभव भी विपत्ति ही है । मोहमें जीवको सर्वत्र आनन्द है ज्ञानवानको संपदा विपदामें सर्वत्र आनन्द है और मोही जीवको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


सम्पदाके बीचमें भी विपत्ति है। मोह है इसलिए मोही कहा जाता है वैसे तो मोह, मूढ़ता व अज्ञान सब एकार्थक है, किन्तु लोग मोही सुनकर तो बुरा नहीं मानते लोग मूढ़ सुनकर बुरा मानते हैं बात एक है। मूढ़ तो मोह करनेसे बना है, कुछ कहनेसे नहीं।

एक आदमी था ईवकूफ, उसका नाम मूरखचन्द रख दिया लोगोंने। उसे सब लोग मूरखचन्द कहते थे। वह गांवके बाहर भग गया और रास्तेमें एक कुंवां था उसमें पैर लटकाकर बैठ गया। इतनेमें एक आदमी निकला और उसे इस तरह जब देखा तो बोला अरे मूरखचन्द कहां बैठा है। उसने प्रेमसे उसके गले लगकर कहा कैसे आपने जाना कि मेरा मूरखचन्द नाम है ? किसने तुम्हें बताया कि मेरा नाम मूरख-चन्द है। वह मुसाफिर बोला कि तेरी करतूतही बताती है कि तुम्हारा नाम मूरखचन्द है। सो भैया उपादान हम लोगोंका अशुद्ध है तो मोही है ही। जिनका उपादान है जिस २ रूप, उनका नाम वैसा पीछे पड़ा। करतूत है तब नाम पीछे है, यह नहीं कि नाम पहले रक्खा हैं कर्त्तव्य पीछे। करतूत पहले नाम बाद में, ज्ञान उसको ही कहते हैं जो अपने ज्ञानके स्वरूपको जान जाय उसका नाम है ज्ञान और अपने ही ज्ञानको स्वयं न जाने और दुनियाँके सारे पदार्थोंको जानता है उसको कहते हैं अज्ञान, यह मोक्षमार्गमें ज्ञान और अज्ञानकी पद्धति है ! कोई कितनी ही ठाट-बाट बनाले कितनीही सम्पदा जोड़ले, परन्तु शान्ति तब तक नहीं मिलेगी जब तक अपने सहज ज्ञान स्वरूप ही मैं हूं इतना स्वयंमें ही यह न मान जाय। मैं ही स्वयंको स्वयंमें सब कुछ हूं यह प्रत्यय हुए बिना शान्ति नहीं है। अपने आप जैसी सत्ता है वैसा न माना जाय तो अपनेमें तब तक शाँति नहीं मिलेगी, लेकिन मोही प्राणीने अपनेको बीसों तरहका मान रक्खा है। है यह एक तरहका सर्वसाधारण चेतनामात्र एक स्वरूप। परन्तु मान रक्खा है बीसों तरहका अपनेको। अमुक आकारका मैं हूं, मैं अमुक जातिका हूं, ऐसा अनुभव है अफसर हूं। मैं ऐसी इज्जत वाला हूं, बाप हूं, मामा हूं, बच्चा हूं, कितने तरहका मान रक्खा है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कि गिनती तक नहीं करायी जा सकती है भीतरसे इतने विकार बिकल्प उत्पन्न होते हैं जिनका कोई बयान नहीं कर सकता, तो बोलो कितने रूप अपनेको मान रक्खा है अनगिनती रूप अपनेको माना हैं, है तो यह एक रूपका; जैसा भगवान वैसा मैं चेतनामात्र हूं किन्तु मान रक्खा है अन्य रूपोंमें ज्ञानको। कैसी मूर्खता है, मूर्खता मूढ़ता मोह सब एक ही बात है जरा भी अन्तर नहीं है चाहे मोही कह लो चाहे मूढ़ कहलो। मैं स्वयं अपने आप कैसा हूं इसका निर्णय ही सच्चा ज्ञान है, इतना ज्ञान हो जानेके बाद फिर लौकिक ज्ञान भी चलता रहे तो भी यह जीव अज्ञानी नहीं कहलाता, क्योंकि वास्तविक ज्ञानके कारण मोक्षमार्गका ज्ञान प्रकट हो गया है। मैं प्रभू समान चैतन्य स्वरूप एक पदार्थ हूं इसका किसीसे सम्बन्ध नहीं, इसको किसीकी अपेक्षा नहीं, यह तो बिल्कुल स्वतन्त्र है ऐसे अपना स्वरूप अनुभवमें आये तो मुख्य ज्ञान तो हो ही चुका लौकिक बातोंका ज्ञान न हो सके, नहीं सही, उससे मोक्ष मार्गमें बाधा नहीं आती। एक यह ज्ञान हुआ कि बादमें फिर सभी बातें ठीक होती चली आतीं। एक बर्तन सीधा नीचे रक्खें तो तुम उसके ऊपर सारे घड़े सीधे रखते चले जाओ तीसरा घड़ा रक्खोगे सीधा आयगा, उल्टा कोई नहीं जायगा।

तेरी आत्माको स्वयं ज्ञान हो गया तो जो करेगा ठीक होगा बनावटकी बात ज्ञान में नहीं आयगी जो करोगे सीधा करोगे क्योंकि मूलमें अपनेको सीधा बना रक्खा है। यह सत्परिणाम रक्षक है उसका, दूसरा तो दूसरा ही है, उसका तो उसमें अत्यन्तअभाव है उससे मेरी रक्षा हो ही नहीं सकती। उसकी रक्षा यही है कि बनावट, सजावट, दिखावट इससे दूर रहे, इसीसे सारा जीवन उसका ठीक होता चला जाता है। उसका स्वभाव है ज्ञाता बनना, जान लेना, यहां तक कि उसमें बिकार नहीं कुछ। पवित्र तो मैं हूं, इतना काम करनेसे तो मैं स्पष्ट पवित्र हूं, कितना कि जान लो। केवल जानना ही जितना स्वरूप है उतना जान लो। जानना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



आत्माका स्वभाव है उससे आत्माको अलग नहीं किया जा सकता है, पर जाननेके अतिरिक्त जो परिणाम पैदा होता है राग करनेके पक्षपात करनेके भाव बनते हैं तो विपदा ही विपदा है सारा काम बेकार हैं, अपवित्र है, इस की बर्बादीके कारण हैं। सो भैया यही भाव रक्खो कि केवल ज्ञाता बनना है और यह ज्ञाता स्वयंके समझनेके लिए होना है। आत्माका सहजस्वरूप शुद्ध है रागद्वेष क्लेश भी जहां नहीं है और यह सभी स्वाधीन है। बाकी यह सब बातें जो सबको आसान लग रहीं हैं श्रम करके होती हैं, देखलो कैसा उसका स्वरूप है कैसा आपका स्वरूप है कैसा जीवका स्वरूप है, किन्तु मोही जीव यथार्थ न देखकर आपको अन्यथा देखता है। यह पर्याय धन अनित्य है ऐसा अपने बारेमें तो सोच नहीं पाता दूसरेके जरूर अनित्य समझ लेता है यानी दूसरेकी अनित्यता तो मनमें भर रक्खी है कि यह उसका है मिट जाता है, लड़के उसके हैं वे मर सकते है यह दूसरा है मर सकता है किन्तु मैं यह मरने वाला हूं अपने पक्षका खण्डन कुछ नहीं कर सकता है दूसरोंके परिवार, धन, बच्चोंके प्रति कह लेता कि इनका है क्या, भला अपने घर वालोंको ऐसा कह पाता है क्या, उस जीवका स्वरूप विलक्षण कुछ अलग बैठा है क्या। किसका कौन है। कोई आदमी अपने देशसे भागकर डोर लुटिया लेकर चला, दो एक रुपया लेकर चला किसी शहरमें ठहर गया वह १०, ५ वर्षमें हो गया लखपती। उसने यह नहीं सोचा अपनेको कि यह लाखोंका धन मेरा नहीं है किसी सालमें आ गया टोटा। रह गये कोरे, तब उसने समझ लिया कि मैं लुटिया डोर लेकर ही तो आया था मेरा क्या है, ऐसे ही आया ऐसे ही गया इसी तरह से वियोग होनेपर तो हमने समझ लिया कि हमारा कुछ नहीं है, न मेरा कुछ होगा, पहले भी कुछ नहीं था। पुण्योदयसे जो जो मिला है वह सब हमारा कुछ नहीं है यह सब तो पर वस्तु है यह बात तब समझमें आती है जब उसका वियोग हो जाता है जैसे दादा, दादी वगैरह जो मर चुके हैं उनके बारेमें तो यह निर्णय कर लिया है कि वे मेरे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



नहीं थे किन्तु जो अभी समागम में हैं उनको नहीं सोच पाता कि ये मेरे नहीं हैं। सत्य विश्वास हो जाना कि उसका कुछ नहीं है यह कठिन है, यह सत्य है विश्वास न करें तो भविष्यमें भी जरा भी संतोष नहीं होगा। अपने यथार्थ स्वरूपको समझता है जो, उसीको ज्ञानी कहा है। जो वर्तमानमें मिला है वह अत्यन्त भिन्न है इसका कोई स्वरूप मुझमें नहीं है ऐसी दृष्टि वर्तमानमें मिली हुई पदार्थोंमें आ जाय उसे कहते हैं ज्ञानी। जिसने यह कर लिया उसका वेड़ा पार और नहीं कर लिया तो यहां भी दुखी, और मृत्युके समय भी दुखी और जहां जन्म लेगा वहाँ भी दुखी सब जगह दुख जैसे यहाँ सब लोग कहते हैं कि ससुराल चनेकी खेती है, जैसे शुरूमें चना उग गया उसमें हरे पत्ते आये, पत्तोंकी साग काम आयी हरे चने लगे तब घेंटी तोड़कर, चने खाये और गदरा हुए तो होला वनाकर खाया जव खूव पक जाँय तव दाल वनाके खाया सेव वनाके खाया। ऐसे ससुरालमें सगाईमें रुपये पाये शादीमें धन लूटा, बच्चे हुए तब धन लूटा, बच्चेकी शादी हुई तो धन लूटा, लूटते चले जाते हैं। ऐसे ही यह अज्ञान है इस अज्ञान में हर जगह दुःख है जिस समय अज्ञान है तब तो दुख होगा मरणके समय वियोग है तव दुख होगा, मरनेके बाद जो भव माया वहां दुख। सो भैया! अज्ञानसे हटकर अपने स्वरूपका निर्णय कर लो। पैसा अपने पास न्यायसे थोड़ा श्रम करके जितना आये उसीमें हिम्मत करके गुजारा कर। अपने हांथ स्वयं परिश्रममें जो आता है उसका संतोष कर, शर्म छोड़ दे कि दुनियाको कुछ दिखाना है। केवल भगवानको देख तुम्हारे ज्ञानमें यह प्रभु आया कि नहीं। जो न्यायसे मिले उसमें गुजारा करना एक तपस्या है, कुछ क्लेश है और क्लेश कुछ भी नहीं तव तो इसका आनन्द समझमें आयगा नहीं तो धोखा खायेगा। अपनेको ही देख ले मेरा भगवान स्वरूप मेरी रक्षा कर सकता है दूसरा कोई नहीं, जब घरेलू कार्य धन्धे वढ़ते हैं तो इसके मोक्ष मार्ग में बाधा डालते हैं सादगीसे रहना मोक्ष मार्गकी बाधाओंको दूर करना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



है। जब ज्ञान शक्ति कम करदी जाती है तब सन्मार्गमें बुद्धि चलती है। जो ज्ञानी जीव है उस जीवको इतनी फुरसत कहां कि वह शरीर के शृंगार करे। ज्ञानीतो गृहस्थीमें रहता जरूर है किन्तु जलमें कमलवत् भिन्न उसको तो लौकिक काम करने पड़ते हैं, किन्तु भावना यह है कि कब घर छोड़कर अपने स्वरूपमें रम स्वयं ज्ञातामात्र बनूं। ऐसा ही स्वरूप सब जीवोंमें है। जो सर्वस्व मेरा स्वरूप स्वाधीन है समतासे भरा हुआ है मैं अपने स्वाधीन उस शान्त स्वरूपको देखकर अपनेमें अपने आप स्वयं सुखी होऊं दूसरोंकी आशा न करें कि यह जीव उसे सुखी कर देगा; यह पदार्थ कर देगा, जब भी सुखी होंगे तब अपने ज्ञानसे अपनेमें स्वयं ही सुखी होंगे।

यत्रैव भासते विश्वं सोऽहं विश्वं न साकृतिः।
ज्ञाता द्रष्टा स्वतन्त्रोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥१-२४॥

मैं क्या हूं, जहां यह सारा विश्व प्रतिभासित होता है वह मैं हूं। ज्ञान का काम जानना है थोड़ा जानना नहीं, बस जानना है सब जानना है, क्योंकि आत्मा का स्वभाव जानना है। उस जानने में सीमा नहीं है कितना जानना उसका तो जाननेका स्वभाव है और जानना कोई सापेक्ष नहीं है कि सामनेकी ही जाने, जान जावो सामनेकी, ठीक है, किन्तु उसके हिसाबसे जानना नहीं है किन्तु यदि कोई वस्तु है उसका जानना है, सतके हिसाबसे जानना है, सामनेके हिसाबसे जानना नहीं है, १०,२० कोसके हिसाबसे जानना भी नहीं है, किन्तु है तो वह सब जानता चाहे वह क्षेत्रकाल की दूरी के रूप से है चाहे किसी तरहसे है। हैं तो जान लेता फिर आत्माके ज्ञानका कितना जाननेका स्वभाव है? कितना हैं? कितना जानने का काम हैं? सर्व जो कुछ भी सत् होता है वह सब जानने में है किन्तु यहां मुझमें जगत नहीं है और आत्मामें जो यहां आकार बन गया आत्मा में ज्ञेयाकार बन गया, प्रतिभास बन गया वह भी मैं नहीं ऐसा मैं शास्वत हूं, किन्तु दुखकी बात है कि उस पर दृष्टि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


नहीं, जहां पर सारा विश्व प्रतिभासमान होता है जहाँ सारा विश्व प्रतिभासित होता है वह तो मैं हूं पर मैं प्रतिभास नहीं, क्योंकि मैं आनन्द निधि ज्ञान चेतना-मात्र हूं। शक्ति-मात्र हूं आत्म-स्मरण करके ज्ञानमें ज्ञान समझा तब योगी महा सुखी हुए। संसारमें रहता तो किसीका कुछ है नहीं सब मिटेगा, सब का बिछड़ना होगा लेकिन जब यह मिलता है उस समय ऐसा समझ ले तो उसका बेड़ा पार है और यदि उल्टा समझले और मरणके समय छोड़ना पड़े तो सब बेकार है। जगतमें ठाटबाट हैं मोहके साधन हैं, पैसा है धन है, नौकर हैं, चाकर हैं अच्छे अच्छे महल बने हैं मगर समझाने वाला बिवेक जब भीतरसे आता है तो आरामके साधन सब विष लगने लगते हैं। समझने वाला कोई हो छोटे बड़े की अपेक्षा ही नहीं। जब भविष्य अच्छा है तो उसका ज्ञान बढ़ेगा, विरति होगी, आत्मद्रष्टि जगेगी, भीतरकी प्रेरणा ही इस जीवको समझा सकती है।

गुरुजी एक कथा सुनाते थे कि एक बाजार में कुजड़िया थी, भाजी बेचने वाली। बादशाह सामनेसे निकला, देखा-कुजड़ियाकी लड़की भी वहां बैठी थी, बादशाहने इच्छाकी कि शादी हो जाय। वजीरने कुजड़ीको बहुत समझाया कि बादशाहकी ऐसी इच्छा है कि हमारी शादी इस लड़कीसे हो जाये। कुजड़ियेके यहांकी भड़वे-भड़वे की बोली, सो कुजड़ी यही गाली देकर बोली कि लड़कीकी शादी वहाँ होगी जहां १० बातें गालीकी भी सुनाई जावेंगी, बादशाहके यहां ऐसी कुछ बोलचाल ही नहीं। दीवान गया, और भी लोग गये सबको गाली सुनाई। एक सिपाही बोला महाराज अभी मैं ठीक कर सकता हूं। उसे क्या चाहिये था। बस, सिपाही गया कुजड़िये की चोटी पकड़ी और खूब झटकारा कुजड़ियेने कहा बात कैसी है आखिर बताओ तो क्या बात है। बात है क्या देख यह बात है कि तेरी लड़कीकी शादी बादशाहसे की जायगी, कुजड़ी बोली कि ठीक है, सिपाही बोला कि तू तो पहले करनेको तैयार नहीं थी, कहने लगी भड़वों का भड़वा कोई समझाने वाला मिला नहीं है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जो मुझे यों बतादे। हां यों इस तरह समझाने वाले कोई हैं नहीं। जैसा मोहियोंने चाहा सो किया कर्त्तव्य कुछ नहीं सोचा। हां, तो इस जीवका जैसे कर्त्तव्य करना हो तो विवेक उसको सम्हाल सकता है। पर अन्य कोई ऐसा जीव नहीं है जो उसकी रक्षा कर सके विवेक ही रक्षक है संसारमें हम अपनी परिणतिको देखते हैं तो अभी हीन हैं, पराधीन हैं इस परिणतिका क्या है कुछ ठीक हो गया कुछ बढ़ गया कुछ धन हो गया, क्या मिला। तू तो ऐसा स्वरूप वाला है कि सारा विश्व तुझमें प्रतिभासित है। सर्वद्रष्टा वन, इतना बड़ा तू है, मगर इस वड़प्पनको भूलगया, लौकिक इज्जतको क्या समझता। यदि मर कर कीड़े-मकोड़े वन गये तो फिर क्या होगा अपनेआप कैसा है शुद्ध, सबसे निराला, चेतना-मात्र, नामरहित एक आत्म-तत्व है एक ऐसे जीवसे उसका जरा सम्बन्ध नहीं। अगर मैं मानूं कि परिवार मेरा है तो यह भी मूर्खताका काम है कभी पड़ोसियोंको माना कि मेरे हैं यह भी मूर्खताका काम है सब वस्तुओं में से उत्कृष्ट तो निज भगवान है, परिवारको समझा कि यह मेरे हैं, साधु इत्यादिको समझा कि मेरे हैं, वहाँ मोह है। जहां भगवानको समझा कि मेरा है वहां भी मोह है। केवल एक शुद्ध मैं ज्ञान स्वरूप द्रष्टा हूं वहां मेरा क्या है। इसका ऐसा मोह हो गया कि वह दुश्मनसे भी ममत्वका प्रेम दिखाता है कि यह उसका दुश्मन है। मेर तो मान लिया औरोंको कि यह मेरा है। सबसे निराला जो आत्म-। स्वरूप है उसे तो समझा ही नहीं। किसीको अच्छा खाना मिलता हैं कुछ वढ़िया खाना मिला क्या हो गया। इससे वढ़िया काम तो आत्म-स्वरूपके दर्शन हैं, क्योंकि विषय कषायोंसे पूरा तो नहीं पड़ सकता, पूरा तो पड़ेगा आत्म-विश्वाससे। पर देखो यह सारा विश्व कितना वड़ा है— जिसके एक कोने में रहते हैं यह एक भरत क्षेत्र है, यह कितना बड़ा है ५२६ सही ६ बटे १९ योजन और एक योजन होता है २ हजार कोसका। ऐसे ५५६ योजनका यह भरतक्षेत्र है यह क्षेत्र जम्बू द्वीपमें है यह सब माप इसलिए बता रहा हूं कि यह ध्यानमें आ जाय कि इतना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



बड़ा यह सब लोक है और इसमें एक भी प्रदेश ऐसा नहीं बच जाता है जिस पर यह अनन्तोंबार जन्म मरण न कर चुका हो। इस जम्बूद्वीपके चारोंओर समुद्र है इस तरह समुद्रके बाद द्वीप व समुद्रके बाद द्वीप चलते चले जाते हैं, अरब-खरब-नील-दस अरब, शंख-महाशंख, शंखसे अधिक आजकी भाषामें संख्या नहीं किन्तु इनसे कई गुणों असंख्य यानी जिनकी गिनती नहीं है इतने द्वीप समुद्रके हैं। अन्तमें स्वयंभूरमण समुद्र है यह सब मिलकर भी एक राजू नहीं कहलाते। इस तरह ३४३ घन राजू दुनियां है इतना बड़ा यह सारा विश्व है इस सारे विश्वके बीच अगर एक कोनामें आ गये यानी १०, २० मील की इस एरियामें परिचित हो गये तो क्या बड़ी बात हो गयी। जगतमें अनन्तानन्त जीव हैं इन अनन्त आत्माओंमें मनुष्य कितने हैं अनन्तानन्त जीवों के मुकाबले में सारे मनुष्यों की कुछ गिनती नहीं। समुद्रमें तो एक बूंदकी फिर भी गिनती है। थोड़ेसे जीवनमें अपना आत्म-बोध करके अगर कुछ अपने हितका यत्न कर रक्खा है तब तो तुम्हारी तारीफ है और अपने इस थोड़े समय बाद आयु समाप्त हो जाय और जन्म मरणके झगड़े लगाये रहे इसमें कुछ बुद्धिमानी है क्या। अच्छा बताओ कोई ऐसा समय था कि जिससे पहले समय ही नहीं था क्या यह हो सकता है कि कोई भविष्य में ऐसा समय आयेगा कि उसके बाद कोई समय ही न रहे ऐसे अनन्तकालके बीचमें यह ५० वर्ष का समय बीत जाता है यह ६०,७०,८० वर्षका समय क्या कुछ गिनतीमें रहता है फिर थोड़े समय ५०,६० वर्षके लिए इतना उत्पात मचाना, गर्व करना, पक्षपात करना बाहरी पदार्थोंसे झपटते रहना और उसमें अपनेको एक मेक समझना क्या विवेक है।

सो भैया! यह सब मायामय चीज हैं। अपने अन्तरमें स्वयंको देखो और शुद्ध ज्ञानमात्र बनों। कैसा भी समय हो अपने भीतरकी दृष्टिसे भावात्मक निजमें उपयोग करलो स्वरूपमें केवल आनन्द ही आनन्द है दुख का नाम नहीं है ऐसा चैतन्य भावात्मक रूप जहां कोई लोग कहते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


हैं ब्रह्म है और एक है। यह चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्व जब भाव द्रष्टिसे ही दृष्टि हो तब इसमें अनुपम आनन्द है। हम अपने चैतन्य स्वरूपको देखें वह एक भी नहीं है, अनेक भी नहीं है, वह तो स्वरूप ही स्वरूप है वह अन्य अन्य रूपोंमें नहीं और एक भी नहीं है। मैं स्वरूपमात्र हूं ऐसा वह तत्त्व है जहां लोग पुरुष या ब्रह्म या ईश्वर मानकर उपासना करते हैं ऐसा शुद्ध तत्त्व मैं हूं, ऐसा मानकर अपनी ओर द्रष्टि करें तो मुझे सुख है जहां विश्व प्रतिभासमान होता है वह तो मैं ईश्वर विश्व मैं नहीं हूं, वह ज्ञेयाकार भी नहीं हूं, बाहरी कोई भी चीज सुखके लिए नहीं है राग में अन्धे बनकर चाहे कुछ भी करलें विवेकसे सोंचो तो कौनसा सम्बन्ध सुख है वैभवका या परिवारका सम्बन्ध इस सुखके लिए है कोई भी नहीं है सब सम्बन्धोंमें दुख ही दुख है। मैं ही स्वयं हित रूप हूं सहज अनन्त आनन्दमग्न हूं, सर्वदर्शी हूं, मैं तो ज्ञानी हूं, द्रष्टा हूं, स्वतन्त्र हूं अतः मैं अपने इस ज्ञान स्वरूपसे अपनेमें अपने लिए स्वयं सुखी होऊं। किसी भी बाहरी पदार्थमें दृष्टिकी या अगर किसीकी आशा की तो इतने ही में यानी बाह्य वस्तुकी आशा करनेभरमें ही दुख हो गया। भैया, अपने ज्ञानस्वरूनको देख उसमें सुख है। मैं आत्मा ज्ञान स्वभावमात्र हूं यह नहीं समझता इसलिए चमत्कार बाह्य पदार्थमें सबकुछ देखना चाहते है। जहां यह सारा विश्व प्रतिभासित हो वह मैं हूं, मैं तो उसे जानने वाला हूं। बस जान लिया, अपने ही को जान लिया, इसमें समस्त ज्ञान आ जायगा। लोकमें भी देखो यदि इतना ही कहो कि हम तो जान गये, कोई पूछे क्या जान गये उत्तर दो बस जान गये, सब जान गये, हम तो, जान गये तो वह इतना समझेगा कि वह क्या क्या जान गया, सब जान गया होगा। फिर परमार्थमें तो यही सही हैं कि केवल जानता रहे तो, वह सारा विश्व जान जायगा आत्माका यह स्वरूप ऐसा महत्त्वशाली है कि यह ज्ञानमें आ जाय तो सर्वोत्कृष्ट वैभव मिल गया बस मोह करना मिटादे कि ज्ञानचक्षु काममें आएं। मैं ज्ञान स्वरूपकी आराधना करूं उसमें ही आनन्द है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



स्वाभिन्नं न हितं किञ्चिदद्वैतोऽहं हिते क्षमः ।
द्वैताश्रिता मुधा बुद्धिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२५॥

अपने से भिन्न कोई भी पदार्थ अपने हित रूप नहीं। एक ही यह मैं अपना सर्वस्व हूं अपना हित स्वरूप ही मैं हूं। मैं ही अपना हित करता हूं और मैं ही अपना अहित करता हूं। जहाँ विषय कषायोंमें लगे वहाँ अपना अहित कर डाला और जहां अपने सहज शुद्ध स्वभाव में झुक गये कि अपना हित कर डाला; हित और अहितका उपाय इतना ही मात्र है। यावन्मात्र विषय कषाय परिणमन हैं वह सब अहित है उन विषयोंमें छटनी करले कोई कि ये हित करने वाले हैं व ये अहित करने वाले हैं वह सब अज्ञानके स्वप्न हैं। जो भी समस्त विषय हैं वे सब हानि करने वाले हैं। आनन्द तो ब्रह्मरुचिमें है और सब व्यर्थकी बात है। प्रभू जैसी आनन्दकी झलक हो और सब व्यर्थकी बात है। धन, वैभव बढ़ गया, चार लोग पूछने लगे इस बातसे क्या लाभ है कुछ आनन्द नहीं होगा सब जंजाल, विपदाएं हैं शुद्ध ज्ञानसे आनन्दका अनुभव है। सो वह काम उसका स्वभाव हैं अंतरसे विकल्प विपदाको हटा दिया जाय तो उसका हित है। इसका सुख आत्मानुभवही है इसका सुख किसी अन्यके आधीन नहीं। मैं केवल यह मात्र अद्वैत अपनेमें अपना कार्यकरने में समर्थ हूं। मुक्तिका काम जुल मिल कर नहीं होगा, जुलमिलके तो कोई भी काम नहीं होता है पर फिरभी दुनियां जुलमिलके करती चलती दिखती है लोगोंमें। मोक्षका काम मिलकर होगा क्या। शांतिका उपाय एकहीं अद्वैत भाव है। जब रामचन्द्र जीं तपस्या कर रहे थे वहाँ सीता का जीवप्रतीन्द्र आया इसने तपस्यामें बड़ी बाधा डाली इसलिए कि यह अभी मोक्ष नहो जाय फिर हम दोनों मिलजुल कर जावेंगे, सो भैया ऐसा हो जायगा क्या। जहां मिलने जुलनेकी बात है वहां मोक्ष बन्द है और जहां केवल अपने आपमें अकेला रह जाना है वहां मोक्ष पदार्थ है। मेरी हानि करने वाला मैं ही स्वयं हूं कोई दूसरा नहीं। परतन्त्रताका तनिक भी अनुभव न करना, स्त्री है तो क्या, बच्चे हैं तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


क्या, बड़ा है तो क्या, परतन्त्रताका अनुभव न करो; हां यह बात जरूरी है कि जब जब व्यवहार लगा है तो प्रेमयुक्त विनय व्योवहार करो। एक दूसरे से ठीक बोलना, जहाँ तक बने अपना कष्ट उठाये रहना, दूसरोंको कष्ट न देना, जहां तक हो सके दूसरोंकी सेवा उपकार कर देना, ठीक बचन बोल देना; पर अन्तरंगमें दूसरोंकी अपेक्षाका अनुभव न करना कि मेरी रक्षा करने वाले ये हैं, यह पिता हैं, मेरी रक्षा करने वाले हैं, यह पति हैं, मेरीं रक्षा करने वाले हैं, यह स्त्री है मेरी रक्षा करने वाली है। मेरा भगवान ही मेरी रक्षा करने वाला है काय-रताका अनुभव न करो, नहीं तो यह जीवन दुखी हो जायगा।

देखो भैया, अपनेको मिला भी क्या है वह तो प्रकट न्यारी वस्तु है। उसमें सम्बन्ध ही क्या ? दुनियावी दृष्टिसे मन वचन कायका संयोग है इतका सदुपयोग करो अपनेको ही पुण्य बना लो। ईमान साफ रखना फिर कभी कोई गल्तीकी बातभी नहीं की हो और यदि लोगों में पक्षपात है जिससे तुम्हारा अपमान हो तो भी मान अपमान क्या मानना। अहंकार है तो किस बातका है। तुम्हें तन मिला हैं, मन मिला है, वचन मिला हैं, धनकी तो कोई बात कहना ही नहीं, धनकी तो विचित्रता हैं, किसीके पास धन हैं किसीके पास नहीं पर तन, मन वचन तो सबके पास है वह तो विनाशीक है उसका सदुपयोग कर लो। वह जीवन सुखमय होता है जब तक तनमें बल है तब तक जो दूसरोंकी सेवा करे दूसरोंका उपकार करे और न करे तो इसमें तनमें बलका संचय हो जायगा क्या, और करोगे सेवा तो हांनि नहीं हो जायगी, करोगे तो लाभ होगा। तो वचन मिला बोलनेको तो प्रिय हित वचन बोलो। प्रियवादीको कहीं विपत्ति नहीं और अप्रियवादीको जगह जगह विपत्ति है। एक ऐसा कथानक हैं कि एकबार दांत और जीभमें झगड़ा हुआ दांत बोला, तू क्या इठलाती हैं तू तो अकेली है हम तो ३२ हैं। तू अकेली हैं हम ३२ के बीच में हैं जिस दिन मनमें आयगा बस तू तो खतम हो चलेगी बड़ बड़ मतकर जीभ बोली ३२ हो तो क्या हुआ हममें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri


तो वह कला है कि हम बत्तीसोंको तुड़वादें। सो देखलो भैया, तुम अप्रिय किसीसे बोलदो फिर तो दो चार मुक्कोंमें ही बत्तीसी झड़ जायगी। आपको मिला है भिन्नऔर विनाशीक तन, मन, वचन, सो भैया, तनसे सेवा नहीं करेगा तो तन बेकार है, करेगा तो सफल है, नहीं करेगा तो नहीं। मन है अच्छा अच्छा विचार करलो, सोचलो दूसरोंका सबका हित सोचलो। दूसरोंकाबुरा सोचा तो अपना ही कल्याण करेगा। दूसरोंका अहित सोचनेसे तेरा मनोबल कम हो जायगा, दुखी हो जायगा, जीवनमें एक गुण तो यह आना ही चाहिए कि हम तन, मन, वचनको बर्वाद न करें। परमार्थसे तो तू अपनेसे भिन्न कुछ भी नहीं है। आपमें सब कुछ है खुद अपने दर्शनकर आत्मरूपमें रम। अपने बलमें विश्वास करो तो तुम्हें अलौकिक आनन्द प्राप्त होगा। वह आनन्द बाहर कहां रक्खा है जिनमें तू मोह करता है। सबसे विरक्त रह, व्यवहार जरूर हित मित प्रिय बचनका कर। ममतापूर्वक दूसरोंकी ही सेवामें तू क्या पावेगा दूसरोंसे सुख नहीं होगा यदि ठीक भी बोले तो क्या ? सभी बार ठीक बोल लेंगे परिवारके लोग और यदि दो बार कड़ुवा कहा तो अच्छाई खत्म हो जायगी जैसे कि बढ़िया बढ़िया भोजन बनाके खिलादो और फिर बादमें कहो कि तुम्हारे बाप, दादाने कभी ऐसा अच्छा खाया है, दस सेवायेंकी और एक खोटा बचन बोला तो जितनी सेवा होगी वह सब बेकार हो जायगी।

सो भैया, आप पहलेसे ही समझते जाँय कि यह लड़का जुदा है। इसका पालनपोषण करनेवाला अन्य कोई नहीं है यह अपने पुण्यसे पलता है फिर आपका तो यह मात्रकर्त्तव्य है कि उसको पालपोस लें अगर बापसे बढ़कर पुण्यवान्न लड़का है तो फिर क्या है भाग्यसे ही तो यह लड़का इतनी सेवायें पाने वाला हुआ। बापसे भी बढ़कर पुण्यवाला लड़का हो क्या यह नहीं हो सकता। कैसा ही हो मगर बच्चेकी जो रक्षा होती रहती है उसमें ऐसा सोचना आसान है लड़का मेरा है मैंने ही तो पाला है इसका कुछ ठिकाना लगाया कुछ बेड़ा पार किया मोह अगर बढ़ आवेगा तो उसका फल घोर दुख ही है। यदि ज्ञान पहले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



ही से वना रहेगा तो जीवनमें क्लेश न होगा। आपसे न्यारा कोई अन्य पदार्थ आपको हानि करदे ऐसा कदापि नहीं हो सकता। प्रत्येक पदार्थ अलग अलग स्वरूप लिये हुथ हैं अपने अपने ही में वे परिणित करते हैं। एक वात जरूर है एक भले संगमें रहनेसे संगमें रहनेवाले भी भले हो जाते हैं और वुरे संग में रहनेसे खराव हो जाते हैं पर भाग्य सबका न्यारा है एकत्त्वका आश्रय ही अद्वैतका आश्रय है मेरी रक्षा करनेवाला मैं ही हो सकता हूं और वह कैसा और वह कैसा हो सहजस्वरूप लिये हुए है। सहज सत्ता लिये हुये है। ऐसा मैं हूं स्वयं स्वरूप लिए हुए हूं यह है अद्वैतवुद्धि और अपना स्वरूप भूलकर दूसरा ही मेरा सर्वस्व है ऐसी वुद्धि करना सो द्वैतबुद्धि करना है। दूसरों का आश्रय करके विकल्प करनेवाली वस्तु है उससे अहित ही होता है अन्य की ओर द्रष्टि करनेसे विकल्प होते हैं, विकल्प से मलिनता वढ़ती हैं।

एक कोई ब्राह्मण का लड़का था पढ़ लिख गया उसने कहा हम शादी करेंगे तो अन्धी लड़कीके साथ करेंगे हमारी अन्धीसे शादी हो शादी हो गयी उस स्त्री ने कहा तुमने ऐसा क्या करलिया कुछ दिन बादमें दो तीन लड़के हो गये वाद वह अन्धी जिद करने लगी कि मेरी आंख खोलदो, तुम तो मन्त्र वहुत जानते हो उसने आंख खोलदी दो तीन वर्ष वादमें एक वच्चा और हो गया एक दिन उस स्त्रीने कहा कि तुम मेरी आंखें पहिले क्यों नहीं खोलते थे पुरुष बोला अच्छा, आज एक काम करना, रोटी मत बनाना लड़के आयें और कहें कि रोटी क्यों नहीं बनायी तो कहना कि तुम्हारे बाप हमें गाली देते, नाराज होते इस कारण हमने रोटी नहीं वनायी फिर जो वे उत्तर दें मुझे वताना उसने रोटी नहीं बनाई। बड़ा लड़का आया बोला माताजी आज रोटी नहीं वनाया, मां बोली कि तुम्हारे बापने गाली दी हैं इससे रोटी नहीं बनाई लड़का बोलता हैं कि आप माता हैं और वे पिता हैं आप लोगोंके बीचमें हम क्या कह सकते किन्तु दुख, नहीं सह सकते हम भूखे नहीं रह सकते हैं। दूसरा आया, तीसरा आया, वही बात हुई। चौथा लड़का आया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



और बोला अम्मा आज रोटी क्यों नहीं बनाई, मां ने उत्तर दिया कि हमें तुम्हारे बापने गालियां दी हैं, इससे रोटियाँ नहीं बनाई। तो वह चौथा लड़का बोला कि अम्मा, बाप फापको हम अभी देख लेंगे तू तो रोटी बना, हमें तो भूख लगी है। देखो भैया, आंख खुलनेके बाद स्त्रीमें चतुराई आयी, लोगोंको देखा विकल्प बढ़ें, विकार बढ़ा उसहीका फल देखो चौथे लड़केने क्या कहा। भैया, यहां कोई आनन्दका साधन नहीं आपको जो आनन्द आता है वह लौकिक एवं विनाशीक आनन्द है आपको चाहे जो समय हो कुछ भी साधन हो सर्वत्र जो आनन्द मिलता है वह आनन्द स्वयंका ही मिलता है।

इस वास्ते ऐसा निर्णय करके मेरे वास्ते मैं ही जुम्मेदार हूं मैं अपने परिणामको सदा शुद्ध बनाता रहूं अपने स्वभावकी दृष्टि कर सकूं ऐसा भाव बनाए रहें। किसी भी प्राणीका अकल्याण मनमें न आये ऐसा बनाले तो बेड़ा पार है अन्यथा दुख ही है। भैया, मनुष्य कुछ कर तो सकता नहीं, केवल भाव करता है जैसे बच्चोंकी पंगत होती है तो है क्या उनके पास, कुछ नहीं और कहते हैं पत्ते परस कर कि रोटी खावो, केवल कंकड़ परसकर कहते हैं गुड़ खावो अरे जब कल्पना ही करना है तो पत्तीको रोटी कहकर क्योंपरोसते ही पुड़ी कहकर पड़ोसो कंकड़को लड्डू कह लो इसी तरह केवल सोचना ही न है तो बढ़िया कल्पना करो। वहां तो भैया, परमार्थ नहीं, यहां तो परमार्थ है, सत्व है। सो मनुष्य कुछ कर नहीं सकता सिवाय सोचनेके तब बुरा ही क्यों सोचे, अच्छा सोचे अपना निधि अपना भगवान अपना स्वामी जो कुछ है वह मैं ही अपने आप हूं इसलिए मैं अपनेआप अपनेमें अपने लिए स्वयं दृष्टि हूं और कष्टमुक्त होऊं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशित
का ही विवेच
के लिये हमे है
महार
उनकी सूची नं
हमें सक्रिय सह
मोतीलाल
अध्यक्ष
**श्री स**

५०१)सेठ लक्ष्मीन
५०१)" पन्नालाल
५०१)" नन्हूमल

२५१)" कपूरचन्द्र

२५
२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi